

फोकस इण्डिया
प्रकाशन
दिसम्बर, 2015

विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) द्वारा व्यापार का उदारीकरण: कृषि और किसानों की बरबादी



सहयोग
रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफ्टुंग,
दक्षिण एशिया

विश्व व्यापार संगठन (डबल्यू.टी.ओ.)
द्वारा व्यापार का उदारीकरण:
कृषि और किसानों की बरबादी

FOCUS
ON THE
GLOBAL
SOUTH



विश्व व्यापार संगठन (डबल्यू.टी.ओ.) द्वारा व्यापार का उदारीकरण : कृषि और किसानों की बरबादी

लेखक : अफसर जाफरी

प्रकाशन : दिसम्बर, 2015

द्वारा प्रकाशित :
और इस पुस्तिका
की प्रतियां पाने
के लिए संपर्क

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ
33-डी, तीसरी मंजिल, विजय मंडल एनक्लेव
डी.डी.ए. एस.एफ.एस. फ्लैट्स, कालू सराय, हौज खास
नई दिल्ली-110016
टेलीफोन : 91-11-26563588 , 41049021
<http://focusweb.org/>

सहयोग :

**रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफ्टुंग, साउथ एशिया
सेंटर फोर इंटरनेशनल कॉ-ऑपरेशन**
सी-15, दूसरी मंजिल, सफदरजंग डेवलपमेंट एरिया मार्केट,
नई दिल्ली-110016
www.rosalux-southasia.org

"Sponsored by the Rosa Luxemburg Foundation e.V. with funds of the Federal Ministry for Economic Cooperation and Development of the Federal Republic of Germany."

"Gefördert durch die Rosa-Luxemburg-Stiftung e.V. aus Mitteln des Bundesministerium für wirtschaftliche Zusammenarbeit und Entwicklung der Bundesrepublik Deutschland"

आवरण फोटो साभार : Author (unless stated otherwise)

डिजाइन एवं मुद्रण : पुलशॉप, 9810213737

इस पुस्तिका की विषयवस्तु का इस शर्त के साथ बिना-रोक टोक के पुनर्मुद्रण और उद्धृत किया जा सकता है कि इस स्रोत का उल्लेख किया जाए। फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ उस प्रकाशित सामग्री को पाने पर आभारी रहेगा, जिसमें इस रिपोर्ट का उल्लेख किया गया है।

यह एक अभियान प्रकाशन है और निजी वितरण के लिए है!

Contents

प्राक्कथन	5
व्यापार उदारीकरण : आयात निर्भरता का मसौदा	8
कृषि क्षेत्र में 20 वर्षों से व्यापार उदारीकरण का प्रभाव	11
भारतीय मामले : खाद्य तेल क्षेत्र के ऊपर प्रभाव	12
दाल आयात पर बढ़ती निर्भरता	15
कपास : व्यापार जनित संकट की पुरानी कहानी	16
अन्य विकासशील देशों से आयात लहर के मामले	17
विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organization)	20
WTO क्या है ?	20
WTO की विशिष्टता	22
WTO में निर्णय लेने की प्रक्रिया	24
WTO के मौलिक सिद्धांत	24
WTO के उद्देश्य (Objectives of WTO)	26
WTO की सच्चाई	27
कृषि समझौता (Agreement on Agriculture)	29
‘बाजार में पहुंच’ (Market Access)	30
दोहा दौर के बाद बाजार में पहुंच (Market Access post Doha Round)	34
घरेलू समर्थन (कृषि सब्सिडी)	39
कृषि सब्सिडी में कटौती : एक असफल मुद्दा	47
निर्यात सब्सिडी (Export Subsidy)	51
WTO में खाद्य सुरक्षा एवं भण्डारण का मुद्दा	54
WTO के एकतरफा नियमों को भारत की चुनौती	55
बाली मंत्रिस्तरीय वार्ता (2013) में खाद्य भण्डारण का मुद्दा	57
सशर्त शांति अनुच्छेद (Conditional Peace Clause)	58
बाली मंत्रिस्तरीय बैठक के बाद के घटनाक्रम	59
नैरोबी मंत्रिस्तरीय बैठक से विकासशील देश खाली हाथ लौटे	61
नैरोबी में कृषि और विकासशील देशों का नुकसान	63

प्राक्कथन

अन्तर्राष्ट्रीय मुक्त व्यापार के लिए वर्ष 2015 काफी महत्वपूर्ण है। इस साल इसके सबसे प्रमुख संस्थान – विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना के 20 वर्ष पूरे हो गए हैं। पिछले दो दशकों में WTO के ऊपर कई सवाल उठे। पर एक सवाल तो शुरूआत से उठता रहा है – क्या WTO दक्षिण के देशों (Global South) के छोटे और सीमांत किसानों के लिए प्रासंगिक है। यह सवाल पिछले दो वर्षों में जिनेवा वार्ता के दौरान और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया जब विकासशील देश अपने छोटे और सीमान्त किसानों के लिए 'कृषि समझौते' (Agreement on Agriculture - AoA) के अन्तर्गत 'विशेष और विभिन्न प्रावधान' (Special and Differential Treatment) की मांग कर रहे थे। इस मांग को अमेरिका के नेतृत्व में विकसित देश लगातार नकारते आ रहे हैं। यही नहीं, विकसित देश कृषि क्षेत्र में सब्सिडी खत्म करने के लिए भारत, चीन, इण्डोनेशिया, दक्षिण अफ्रीका जैसे विकासशील देशों के ऊपर लगातार दबाव भी डाल रहे हैं। दूसरी तरफ सच्चाई यह है कि वे खुद अपने किसानों को भारी मात्रा में सब्सिडी प्रदान कर रहे हैं। कृषि क्षेत्र में भारत और अमेरिका द्वारा दी जा रही सब्सिडी में जमीन आसमान का अन्तर है। वर्ष 2012 में अमेरिका अपने किसानों को औसतन 57,901 डॉलर प्रति व्यक्ति की सब्सिडी देता था जबकि भारत ने वर्ष 2010 में प्रत्येक किसान को औसतन 99 डॉलर की सब्सिडी दी।¹ अमेरिका की सब्सिडी भारत से औसतन 585 गुना ज्यादा रही है।

WTO को भूमण्डलीकरण, बाजारीकरण और पुनः औपनिवेशीकरण (re-colonization) का सबसे बड़ा प्रतीक माना जाता है। इन प्रक्रियाओं को विशालकाय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा आगे धकेला जा रहा है जो लगातार अपने बिजनेस के विस्तार के लिए नई जगहों की तलाश में है। इन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता कि इससे गराबों, असहाय और दबे कुचले लोगों के जीवन और रोजगार पर क्या असर पड़ेगा।

जबसे WTO का गठन हुआ है, ऐसा कभी नहीं हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वजह से भुखमरी कम हुई हो, रोजगार बढ़े हों और समग्र विकास हुआ हो। इसके विपरीत भुखमरी में वृद्धि हुई है क्योंकि स्थानीय जनता का पेट भरने के बजाय सारा ध्यान अन्तर्राष्ट्रीय निर्यात को बढ़ाने में लगा हुआ है। फलस्वरूप, कृषि उत्पादों की कीमतें घट रही हैं, किसानों को उचित दाम नहीं मिल रहे हैं तथा कर्ज और बेरोजगारी की स्थिति बढ़ती जा रही है। लोग ग्रामीण इलाकों से शहर की ओर पलायन करने के लिए मजबूर हैं। 'डम्पिंग', अर्थात् विकसित देशों द्वारा अपने माल से अन्तर्राष्ट्रीय बाजार को भरना और कम कीमत पर बेचना, तथा आयात की बाढ़ के कारण भारत सहित सभी विकासशील देशों में कृषि संकट घहराते जा रहे हैं।

WTO का प्रमुख उद्देश्य अनैतिक व्यापार जैसे 'डम्पिंग' और बाजार के ऊपर एकाधिपत्य नियन्त्रण को रोकना है। परन्तु WTO के मौजूदा नियम ठीक इसके विपरीत कार्य कर रहे हैं जिससे निर्यात सब्सिडी तथा 'डम्पिंग' जैसे अनैतिक व्यापार को और बढ़ावा मिल रहा है।

WTO ने विकासशील देशों को अपना माल बेचने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मुहैया कराना सुनिश्चित किया था परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। इसके विपरीत कृषि समझौते की मदद से अमेरिका और यूरोपीय संघ ने

¹ इस पुस्तिका में डॉलर का मतलब अमेरिकी डॉलर है इस के आखिरी पृष्ठ पर डॉलर और यूरो के मुकाबले भारतीय रुपये की कीमत किस वर्ष में कितनी थी दर्शाया गया है।

अपने सस्ते और अत्यधिक सब्सिडी वाले कृषि उत्पादों से अन्तर्राष्ट्रीय बाजार को भर दिया। जिससे विदेशी बाजार में उन उत्पादों की कीमतें गिर गईं और स्थानीय किसानों को उससे नुकसान उठाना पड़ा। छोटे किसानों और खेत मजदूरों की आजीविका पर यह घातक आघात था। कई किसान इसके प्रभाव से उभर नहीं पाए और उन्होंने आत्महत्या का रास्ता चुना।

पिछले 2 वर्षों से WTO वार्ता में एक नई हलचल दिख रही है। हमेशा की तरह इस बार भी कृषि ही केन्द्र में है। यह कहना गलत नहीं होगा कि यह भारत ही था जिसने दिसम्बर 2013 में 'बाली वार्ता' के दौरान 'शान्ति अनुच्छेद'² (Peace Clause) और 'व्यापार सुगमता करार' (Trade Facilitation Agreement) पर सहमति दिखाकर, WTO को उभारा था। भारत ने यह सब जानते हुए कि WTO से आज तक किसी भी विकासशील देश को फायदा नहीं हुआ है बल्कि स्थानीय कृषि बाजार को विकसित देशों के लिए खोलने से किसानों की आजीविका, खाद्य सुरक्षा व सम्प्रभुता हमेशा खतरे में ही रही है।

कृषि समझौता हमेशा से ही WTO में विवादास्पद रहा है। दिसम्बर 2008 से WTO की वार्ता में गतिरोध बना हुआ है क्योंकि विकसित देश कृषि में विकासशील देशों के लिए विशेष छूट का लगातार विरोध कर रहे हैं। इस बात पर हमेशा विवाद रहा है कि प्राथमिकता किसे दी जाए – 'प्रशुल्क' को या 'सब्सिडी' को; तथा 'घरेलू समर्थन' को या 'बाजार में पहुंच' को। विकसित देश बाजार तक पहुंच (market access) को सुगम बनाने के लिए विकासशील देशों पर हमेशा दबाव डालते आए हैं। परन्तु विकासशील देशों की मांग यह रही है कि विकसित देश अपने घरेलू कृषि सब्सिडी को कम करें जो पिछले 20 वर्षों से लगातार बढ़ती जा रही है। दूसरी तरफ भारत की खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम और 'न्यूनतम समर्थन मूल्य' (Minimum Support Price - MSP) का विकसित देश लगातार विरोध करते आ रहे हैं। इस तरह पिछले कुछ वर्षों में इस बहस ने "खाद्य" बनाम "व्यापार" का रूप ले लिया है।

दिसम्बर 2015 में नैरोबी (कीनिया) में हुए 10वीं मंत्रिस्तरीय वार्ता में फिर से एक बार भारत जैसे विकासशील देशों को कोई स्थाई राहत नहीं मिली। विकासशील देशों के लिए जरूरी खाद्य सुरक्षा के लिए भण्डारण और 'विशेष एंव विभिन्न प्रावधान' जैसे कई महत्वपूर्ण मुद्दों को टाल दिया गया। दूसरी तरफ विकसित देश न सिर्फ 'दोहा विकास एजेंडा' को दरकिनार करने में कामयाब हुए बल्कि कई 'नये मुद्दों' को भी घोषणपत्र में शामिल करवाने में सफल हुए। इन 'नए' मुद्दों में प्रमुख हैं – निवेश, प्रतिस्पर्धा नीति, ई-व्यवसाय, जलवायु सम्बन्धित व्यापार, और वैश्विक मूल्य श्रृंखला, इत्यादि जिनसे मुख्य रूप से विकसित देशों के बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को फायदा पहुंचेगा।

व्यापार उदारीकरण के गम्भीर दुःप्रभाव देखने के बावजूद भी हमारी सरकारें मुक्त व्यापार समझौतों (Free Trade Agreements) और क्षेत्रीय व्यापार समझौतों (Regional Trade Agreements) को बढ़ावा दे रही है। पिछले 10 वर्षों में भारत ने श्रीलंका, आसियान (ASEAN), दक्षिण कोरिया और जापान के साथ मुक्त व्यापार समझौतों पर हस्ताक्षर किए। मौजूदा NDA सरकार भी इसी विरासत को आगे बढ़ाते हुए यूरोपीय संघ,

² 'शान्ति उपबंध' – अर्थात् जुर्मने से मोहलत की व्यवस्था जिसमें कुषि सब्सिडी के 10 प्रतिशत से अधिक होने पर भी जुर्मने पर 4 साल की छूट

ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड के साथ विशाल मुक्त व्यापार समझौतों के ऊपर बातचीत कर रही है। इन समझौतों से भारत का कृषि संकट कई गुना बढ़ जाएगा।

द्विपक्षीय समझौतों द्वारा व्यापार उदारीकरण तो WTO से भी ज्यादा खतरनाक है क्योंकि उन प्रक्रियाओं को गोपनीय रखा जाता है। प्रभावित समुदायों से परामर्श के नाम पर केवल बड़े उद्योगों की ही राय ली जाती है। यहां तक की मानव अधिकार के नजरिये से किए गए प्रभाव आंकलन अध्ययनों (impact assessment studies) को भी सार्वजनिक नहीं किया जाता है। परन्तु इस पुस्तिका में द्विपक्षीय समझौतों को ज्यादा उल्लेख नहीं है, इस विषय को हम अपने बाद के प्रकाशन में लेंगे।

इस पुस्तिका के माध्यम से हम WTO और व्यापार उदारीकरण के विभिन्न आयामों एवं किसानों और हमारी खाद्य सुरक्षा के ऊपर पड़ने वाले प्रभावों को प्रस्तुत कर रहे हैं। गरीबी, आजीविका, और पर्यावरण जैसे मानव अधिकार के मुद्दों पर पड़ने वाले व्यापार उदारीकरण के प्रभावों के बारे में, इस पुस्तिका के जरिए पाठकों और विशेष रूप से भारत के किसान संगठनों और आंदोलनों की व्यापक समझ बनाने का प्रयास है। इन मुद्दों पर गम्भीर चिंतन और बहस करना बहुत महत्वपूर्ण है।

इस पुस्तिका के 6 भाग हैं। भाग 1 से 5, नैरोबी वार्ता के पहले लिखे गए हैं और अंतिम भाग को वार्ता के बाद, नैरोबी घोषणा पत्र के ऊपर हमारी प्रतिक्रिया के रूप में लिखा गया है।

भाग 1 में व्यापार उदारीकरण और इसके विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या की गई है;

भाग 2 में 20 वर्षों के व्यापार उदारीकरण का कृषि क्षेत्र के ऊपर पड़ने वाले प्रभावों का उल्लेख है;

भाग 3 में WTO का विस्तृत वर्णन है। इसमें उसके उद्देश्य, सिद्धान्त, और निर्णय-प्रक्रिया का विवरण है;

भाग 4 में कृषि समझौता और उसके पहलुओं (जैसे घरेलू समर्थन, निर्यात सब्सिडी) की व्याख्या करता है;

भाग 5 में सबसे महत्वपूर्ण, खाद्य सुरक्षा के लिए भण्डारण को लिया गया है; और

भाग 6 में नैरोबी मंत्रिस्तरीय घोषणापत्र का विश्लेषण दिया गया है।

व्यापार उदारीकरण : आयात निर्भरता का मसौदा

व्यापार उदारीकरण का अर्थ व्यापार को हर तरह के अवरोधों से मुक्त करना है। इसलिए इसे मुक्त व्यापार भी कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, प्रतिबन्धों तथा अवरोधों को हटाना या उनमें कटौती करना जिससे देशों के बीच माल और सेवाओं का प्रवाह आसान और सहज बनाया जा सके। इसमें दो तरह के अवरोध शामिल हैं—जैसे प्रशुल्क (चुंगी, सरचार्ज और निर्यात सब्सिडी) और गैर-प्रशुल्क अवरोध (लाइसेंस के नियम और विनियम, कोटा और अन्य आवश्यकताएं इत्यादि)। व्यापार उदारीकरण के लिए घरेलू नीतियों को भी बदलना पड़ता है—जैसे स्थानीय मुद्रा का अवमूल्यन, लाइसेंस आवश्यकताओं में ढील, सरकारी नियमों को कमजोर बनाकर निवेश के अवसर खोलना, खाद्य फसलों के बजाय निर्यात फसलों को बढ़ावा देना, घरेलू बाजार को अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों के लिए खोलना, इत्यादि। व्यापार उदारीकरण और आन्तरिक बाजार सुधार में 'निजीकरण' एक प्रमुख आर्थिक नीति के रूप में शामिल है। भारत और अन्य कई विकासशील देशों में 1990 के दशक में हुए आर्थिक सुधारों का यह एक सामान्य चित्रण है।

व्यापार उदारीकरण के कई तरीके हैं। कोई भी देश द्विपक्षीय, क्षेत्रीय, या बहुपक्षीय व्यापार समझौते के द्वारा व्यापार उदारीकरण कर सकता है। 'द्विपक्षीय समझौता' किसी अन्य देश या देशों के समूह या क्षेत्रीय समूह के साथ किया जाता है। जैसे भारत ने श्रीलंका, दक्षिण कोरिया, जापान, तथा आसियान (10 दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों का एक राजनैतिक और आर्थिक संगठन जिसमें ब्रूनेइ, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया, लाओस, मलेशिया, मियान्मार, फिलिपीन्स, सिंगापुर, थाईलैंड, वियतनाम शामिल हैं) के साथ मुक्त व्यापार समझौता किया। इन समझौतों में दोनों देशों के बीच माल का विनिमय, व्यवसायिक संबंधों को महत्व देना, प्रशुल्क को हटाना या कटौती करना, आयात कोटा, निर्यात में अंकुश इत्यादि मुद्दे शामिल होते हैं। कुछ द्विपक्षीय व्यापार समझौते दो देशों के समूह के बीच निवेश को बढ़ावा देने के लिए भी किए जाते हैं।

व्यापार उदारीकरण का एक दूसरा तरीका है—'क्षेत्रीय व्यापार समझौता', जैसे 'साफटा'—दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार समझौता (South Asian Free Trade Agreement - SAFTA) जिसे भारत ने दक्षिण एशियाई देशों के साथ किया, या 'आफटा'—आसियान मुक्त व्यापार समझौता (ASEAN Free Trade Agreement)। पिछले एक दशक से द्विपक्षीय और क्षेत्रीय व्यापार उदारीकरण समझौतों में काफी तेजी आई है। बहुपक्षीय समझौतों की ओर झुकाव ज्यादा पुराना नहीं है। बहुपक्षीय समझौते दो से ज्यादा देशों के बीच होते हैं जो जरूरी नहीं की एक ही क्षेत्र से या महाद्वीप से हों। इन समझौतों की विषय वस्तु WTO से कहीं ज्यादा व्यापक और वृहद होती है। उदाहरण के तौर पर वर्तमान में 'क्षेत्रीय विस्तृत आर्थिक साझेदारी' (Regional Comprehensive Economic Partnership – RCEP) को लेकर भारत और 16 देशों के बीच बातचीत चल रही है जिसमें आसियान के 10 राष्ट्रों के साथ-साथ आस्ट्रेलिया, चीन, जापान, न्यूजीलैंड, दक्षिण कोरिया शामिल हैं। इन बहुपक्षीय समझौतों का आकार ही नहीं बल्कि इनके मुद्दे भी काफी व्यापक हो सकते हैं। इसलिए इन्हें नए दौर के विशाल समझौतों के रूप में देखा जा रहा है। यहां सवाल यह नहीं है कि उदारीकरण का कौन सा तरीका बेहतर है। कुछ देशों के मानना है कि इन सभी तरीकों की अपनी-अपनी खूबी है। इसलिए ज्यादातर देश व्यापार उदारीकरण के इन सारे तरीकों को अपना रहे हैं।

पिछले 2 दशकों में सबसे प्रचलित व्यापार उदारीकरण WTO के माध्यम से हुआ जिसकी स्थापना 1995 में हुई। WTO एक ऐसा संगठन है जो न सिर्फ व्यापार उदारीकरण में मदद करता है बल्कि यह सरकारों को आपस में समझौता करने का मंच भी प्रदान करता है। इसके साथ-साथ व्यापार विवादों को निपटाने में भी इसकी भूमिका है। WTO में इस वक्त 162 सदस्य देश हैं और करीब 18 समझौते सम्मिलित हैं। इनका सम्बन्ध माल, कृषि, बौद्धिक सम्पत्ति, सेवाएं, स्वास्थ्य सम्बन्धी और पादप स्वच्छता (phyto-sanitary) इत्यादि के व्यापार से है।

द्विपक्षीय और बहुपक्षीय तरीकों के अलावा 'स्वायत उदारीकरण' (autonomous liberalization) भी एक तरीका है। इसे 'एकांगी व्यापार सुधार' (unilateral trade reforms) भी कहा जा सकता है। भारत जैसे कई विकासशील देशों में इस प्रकार के व्यापार सुधार पिछले 3 दशकों से होते आ रहे हैं। एकांगी नीतियों में विनियमन दर व्यवस्था, विदेशी निवेश, बाहरी उधार, आयात लाइसेंस, आयात प्रशुल्क और निर्यात सब्सिडी शामिल है। भारत धीरे-धीरे खाद्य आयात के ऊपर शुल्क, प्रशुल्क और कोटा को कम या खत्म कर रहा है। इनकी वजह से आज तक हमारे किसान सब्सिडी युक्त विदेशी माल से मुकाबला कर पा रहे थे। भारत ने अपने औसत प्रशुल्क को खुद से घटाकर 10 प्रतिशत कर दिया जो 1995 में 40 प्रतिशत था। यह व्यापार उदारीकरण के लिए किसी भी देश द्वारा किया गया अब तक का सबसे बड़ा प्रयास है। WTO द्वारा किए गए वर्ष 2015 में भारत के व्यापार नीति के आंकलन के अनुसार भारत का औसत प्रयुक्त (applied) आयात प्रशुल्क चार साल पहले के 12 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2014-15 में 13 प्रतिशत³ हो गया है। इसका मुख्य कारण कृषि उत्पादों जैसे अनाज, तिलहन, वसा (fat), शक्कर और मिश्टान इत्यादि के कर में 3 प्रतिशत की वृद्धि है।

अमेरिका के व्यापार प्रतिबन्धों के दबाव में आकर भारत जैसे विकासशील देश ही नहीं बल्कि जापान जैसे विकसित देश भी एकांगी व्यापार उदारीकरण करने को मजबूर हो जाते हैं। अमेरिका ने वर्ष 1974 व्यापार अधिनियम के अनुच्छेद 301 को अपनाते हुए कई देशों के ऊपर एकतरफा व्यापार प्रतिबन्ध लगाए हैं। ये प्रतिबन्ध ज्यादातर उन देशों के खिलाफ लगाए गए हैं जिन्होंने गैर-प्रशुल्क अवरोधों द्वारा अमेरिका के व्यापार को सीमित रखने की कोशिश की। इस प्रकार गैट (General Agreement on Trade and Treaty – GATT) के व्यापार विवादों के निपटान नियमों के बदले अब एकतरफा निर्णयों (प्रतिबन्धों के रूप में) को बढ़ावा दिया जा रहा है। अमेरिका ने अपने व्यापार अधिनियम, 1988 के अनुच्छेद 301 को और सशक्त बना दिया और उसमें नये प्रावधान जोड़कर इसे 'सुपर-301' का नाम दिया है।

आज विकासशील देशों में अर्थव्यवस्था का उदारीकरण और व्यापार अवरोधों को खत्म करना आम हो गया है। पहले के दशकों में आयात और निर्यात प्रशुल्क, कोटा, निर्यात सब्सिडी और तकनीकी अवरोध, इत्यादि केन्द्र में थे। विकासशील देश अब सुरक्षात्मक उपायों का त्याग कर मुक्त व्यापार की ओर बढ़ रहे हैं। किसी भी देश के व्यापार उदारीकरण की स्थितिका पता इस बात से चलता है कि वह देश वैश्विक आर्थिक व्यवस्था में किस हद तक समाहित है। यह कहा जाता है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में समाकलन देशों के लिए आर्थिक

³ <http://www.thehindubusinessline.com/economy/indias-average-import-tariffs-up-marginally-in-4-years-wto-review/article7275488.ece>

विकास, उन्नति, गरीबी उन्मूलन के मजबूत उपाय हैं। परन्तु हकीकत में भारत समेत अनेक विकासशील देशों में गरीबी कम होने के बजाए वहां के किसानों की हालत और खराब होती जा रही है और मजबूरन उन्हें आत्महत्या करना पड़ रहा है। भारत ने अपनी अर्थव्यवस्था को विश्व के उच्च-लागत वाली अर्थव्यवस्थाओं के साथ जोड़ दिया है। इससे हमारे यहां का जीवन यापन महंगा हो गया है। विश्व बाजार में रुपये की कीमत गिर गई है और पेट्रोल के दाम बढ़ गए हैं। शेतकारी संगठन के किसान नेता विजय जावन्धया के अनुसार भारत सरकार ने सिलसिलेवार वेतन आयोग गठित कर शहरी और वेतन भोगी वर्ग को तो आर्थिक मदद पहुंचाई पर गांव के किसानों और खेत मजदूरों के लिए कोई भी कदम नहीं उठाए हैं। खेती अब महंगी हो गई है और जीवन यापन के खर्च भी बढ़ गए हैं पर कृषि उत्पादों की कीमतों को जान बूझ कर कम रखा जा रहा है ताकि खाद्य महंगाई दर को नियंत्रित किया जा सके। इस प्रकार भारत के किसानों को दोहरी मार झेलनी पड़ रही है। किसानों की बढ़ती आत्महत्या की घटनाओं के पीछे यह एक प्रमुख कारण है।

व्यापार उदारीकरण की एक और सच्चाई यह है कि प्रशुल्क में कटौती करते ही देशों की वित्तीय आमदनी घटने लगती है और फलस्वरूप विकासशील देशों की सरकारें शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज कल्याण, जैसे गरीबी उन्मूलन खर्चों में भी कटौती करने के लिए मजबूर हो जाती हैं।

इसके अलावा व्यापार उदारीकरण और WTO के कारण किसान हित में नीति बनाने में कई दिक्कतें खड़ी हो जाती हैं। उदाहरण के तौर पर व्यापार उदारीकरण के कारण किसान अपनी परम्परागत निर्वाह खेती को छोड़कर निर्यात उन्मुख, गहन-लागत वाली नकदी फसल और गैर-खाद्य नकदी फसल उगाने को मजबूर हो जाते हैं। बड़े किसानों के पास पूंजी की कमी नहीं होती। उनके लिए यह बदलाव आसान है। पर छोटे और सीमांत किसानों के लिए इससे निपटना कठिन हो जाता है। धीरे-धीरे वे कृषि बैंको और स्थानीय सूदखोरों के चंगुल में फंसते जाते हैं। कर्ज नहीं चुका पाने की स्थिति में बहुत सारे छोटे किसान अपनी जमीन और अन्य सम्पत्ती से हाथ धो बैठते हैं। रोजगार के लिए उन्हें मजबूरन कभी शहर की ओर रुख करना पड़ता है तो कभी किसी अमीर किसान के यहां मजदूरी।

खाद्य उत्पादन में बदलाव के कारण कई प्रकार से खाद्य आत्मनिर्भरता पर असर पड़ता है। सबसे पहले घरेलू खपत के लिए अनाज और दालों की कमी के कारण खाद्य सुरक्षा प्रभावित होती है। अच्छी कृषि भूमि का निर्यात-उन्मुख व्यवसायिक खेती और उद्योगों के लिए इस्तेमाल होने लगता है, जिससे खाद्य उत्पादन पर बुरा असर पड़ता है। मुख्य खाद्य उत्पादों का घरेलू खपत के बदले निर्यात होने लगता है। इससे गरीबों का पेट भरने या सूखे जैसी स्थिति से निपटने की हमारी क्षमता कम हो जाती है। हमारे राज्य जिन्हें अपनी घरेलू खपत के लिए खाद्य उत्पादन में सक्षम होना चाहिए था अब वे खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम (जनवितरण प्रणाली) पर आश्रित हैं। इस प्रकार व्यापार उदारीकरण के कारण ग्रामीण समुदायों की दरिद्रता बढ़ती जा रही है।

कृषि क्षेत्र में 20 वर्षों से व्यापार उदारीकरण का प्रभाव

वर्ष 1990 के शुरुआत तक भारत की अर्थव्यवस्था कमोबेश बन्द (closed economy) थी। भारत का आयात प्रशुल्क (tariff) औसतन 80 प्रतिशत से अधिक था। करीब 90 प्रतिशत से अधिक उत्पादों के आयात को मात्रात्मक प्रतिबन्धों (quantitative restrictions) के जरिए सुरक्षित रखा गया था। विदेशी निवेशों के ऊपर कड़े प्रतिबन्ध लगाए गए थे।⁴ वर्ष 1991 में व्यापार सुधार के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था को उदार बना दिया गया और इस प्रकार भारत में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शुरुआत हुई। वर्ष 1991 में देश में कई बड़े व्यापार सुधार किए गए जिनमें प्रमुख हैं :

- थोक आयात में मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाना;
- आयात प्रशुल्क में भारी गिरावट; निर्यात-उत्पादन के लिए किए गए आयात की दरों में विशेष छूट;
- विशिष्ट उत्पाद के निर्यात को मिल रहे प्रोत्साहन को भारतीय रुपये के अवमूल्यन के जरिए बन्द करना;
- निर्यात प्रोत्साहन और आयात प्रबन्धन के उपाय के रूप में विनियम दर का उपयोग;
- छोटे-मोटे प्रशासनिक कार्यवाहियों को खत्म करना जैसे न्यूनतम-मूल्य प्रतिबन्ध हटाना;

आर्थिक उदारीकरण के शुरुआत में कृषि इसका हिस्सा नहीं था। विश्व बैंक द्वारा लागू किए गए 'ढांचागत समायोजन कार्यक्रम' (Structural Adjustment Programme) के केन्द्र में उद्योग प्रमुख थे। कृषि क्षेत्र में असली नीतिगत बदलाव तब आए जब भारत ने अप्रैल 1994 को मार्राकेश (Marrakash, Morocco) में WTO के कृषि समझौते पर हस्ताक्षर किया। इसके बाद कृषि व्यापार के उदारीकरण के लिए कई कदम उठाए गए जिनमें वर्ष 1994 से 1996 तक कई कठोर सुधार भी शामिल थे। उदाहरण के तौर पर जनवरी 1994 में सरकार ने बासमती चावल के ऊपर से न्यूनतम निर्यात मूल्य को खत्म कर दिया; मार्च 1994 में चीनी और कपास के ऊपर से आयात नियन्त्रण हटा दिया गया; और फरवरी 1995 में करीब-करीब सभी खाद्य तेलों (नरियल तेल को छोड़ कर) को खुले सामान्य लाईसेंस की श्रेणी में डाल दिया गया।

इसी बीच भूमि और बीज से जुड़े राष्ट्रीय कानून भी बदल रहे थे। इन्होंने भी कृषि के क्षेत्र में व्यापार उदारीकरण को आगे बढ़ाने का कार्य किया। इस प्रकार से कृषि और बीज सप्लाई को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों में जाने दिया गया। जल्द ही कम कीमत और पैदावार में उतार-चढ़ाव के कारण व्यापार उदारीकरण के खतरनाक परिणाम मिलने लगे। नए बीज व अन्य सामग्रियों के इस्तेमाल से उत्पादन में उतार-चढ़ाव बढ़ने लगे। साथ ही अधिकतर गैर-खाद्य फसलों की कीमतें कम हुईं। किसानों की कपास और तिलहन की कीमतें तो लम्बे समय तक घटती रहीं। इससे न सिर्फ घरेलू मांग की स्थितियों का पता चलता है बल्कि अंतर्राष्ट्रीय कीमतों के बढ़ते प्रभाव भी सामने आते हैं।

⁴ <http://www.adb.org/sites/default/files/publication/28258/economics-wp177.pdf>

भारतीय मामले : खाद्य तेल क्षेत्र के ऊपर प्रभाव

कृषि समझौता और व्यापार उदारीकरण, खासतौर पर मात्रात्मक प्रतिबन्धों को हटाने के कारण भारत में आयात की बाढ़ (import surge) आ गई। यही हाल दूसरे विकासशील देशों का भी हुआ। भारत में सस्ते उत्पादों का आयात होने लगा और जिन उत्पादों को घरेलू बाजार के लिए तैयार किया गया था, उनके दाम मजबूरन घटाना पड़ा। उदाहरण के रूप में इंडोनेशिया से आयात हुए सस्ते नारियल की वजह से यहां के नारियल की कीमत 80 प्रतिशत गिर गई। भारत में आयात प्रशुल्क कम होने के वजह से मलेशिया से अत्यधिक सब्सिडी युक्त सोयाबीन और ताड़ का तेल बाजार में आने लगे। वर्ष 2015 के सिर्फ अगस्त महीने में ही भारत में 13.33 लाख टन खाद्य तेल आयात हुआ जो पिछले 2 दशकों में सबसे ज्यादा था।⁵ 'सोलवेंट एक्सट्रैक्टर्स एसोसिएशन' (Solvent Extractors Association) के अनुसार वर्ष 2014-15 में वनस्पति तेल का आयात 146.1 लाख टन के रिकार्ड स्तर तक पहुंच गया जो पिछले वर्ष की तुलना में 23.64 प्रतिशत अधिक है।⁶ भारतीय उत्पादकों के अनुसार सस्ते आयातित उत्पादों की वजह से स्थानीय किसान प्रतिस्पर्धा से बाहर होते जा रहे हैं और उनका व्यवसाय नष्ट हो रहा है। अब भारत बाहर के सप्लायर पर निर्भर है। भारत की खपत का करीब 70 प्रतिशत से भी ज्यादा वनस्पति तेल हमें विदेशी विक्रेताओं से प्राप्त हो रहा है।

खाद्य तेल में उदारीकरण की कहानी⁷

पिछले 20 वर्षों से भारत में हो रहे व्यापार उदारीकरण का सबसे गम्भीर प्रभाव तिलहन क्षेत्र और खाद्य तेल उद्योग में देखने को मिले हैं, जैसे—'आत्मनिर्भरता' से 'आयात-निर्भरता', 'छोटे उद्यम आधारित अर्थव्यवस्था' से 'बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अधिपत्य' और 'खुला तेल विक्रय' से 'ब्रान्डेड तथा पैक तेल'। इस दौरान खपत व उपभोग के तरीकों में भी बदलाव देखे गए। उपभोक्ता अब पारम्परिक तेलों के अलावा, ताड़ का तेल जैसे खाद्य तेलों को भी स्वीकार करने लगे थे। खाद्य तेल क्षेत्र इस बात का एक अच्छा उदाहरण है कि कैसे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने सभी प्रकार के खाद्य तेलों के ऊपर अपना अधिपत्य जमा लिया है। बहुत जल्दी यह पूरा क्षेत्र कारगिल (Cargill), कोनआगरा (Con Agra), बुंगे (Bunge) जैसे मुट्ठीभर बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कब्जे में आ जाएगा। इससे हमारी इस बात की पुष्टि हो जाती है कि WTO और मुक्त व्यापार समझौते जिस व्यापार उदारीकरण की वकालत कर रहे हैं वह आमतौर पर बड़े बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को ही फायदा पहुंचाते हैं।

खाद्य तेल क्षेत्र में व्यापार उदारीकरण :

खाद्य तेल में व्यापार उदारीकरण के भारत के अनुभव काफी कड़वे हैं। इसकी वजह से मांग और उत्पादन में फासला काफी बढ़ गया है। मांग और उत्पादन में बड़ा अंतर पहली बार 1980 के दशक में देखने को मिला।

⁵ http://articles.economictimes.indiatimes.com/2014-09-15/news/53943093_1_vegetable-oil-imports-soyabean-oil-palm-oil

⁶ <http://indiatoday.indiatoday.in/story/india-imports-record-14.61-mt-vegetable-oil-in-2014-15/1/524260.html>

⁷ यह भाग अफसर जाफरी के प्रस्तुति का नवीन रूप है जो उन्होंने कर्नाटक राज्य रय्यत संघ (के.आर.आर.एस) द्वारा आयोजित एक पब्लिक मीटिंग में 6 जुलाई 2011 को जिला चमराजनगर कर्नाटक में दिया था; <http://siccfm.blogspot.in/2012/01/trade-liberalisation-and-impact-on.html>

वर्ष 1988 में जब 20 लाख टन की कमी हो गई तो भारत को करीब 100 करोड़ अमेरिकी डॉलर में 19 लाख टन खाद्य तेल का आयात करना पड़ा था। खाद्य तेल आयात के कारण जब भारत का विदेशी मुद्रा कोश खाली होने लगा तो भारत सरकार ने उत्पादन बढ़ाने के लिए कई कदम उठाए। इसी क्रम में उत्पादकों को तिलहन की ओर आकर्षित करने के लिए वर्ष 1986 में तिलहन पर प्रौद्योगिक मिशन (Technology Mission on Oilseeds) का गठन किया गया। इससे तिलहन का उत्पादन अगले 6 वर्षों में 70 प्रतिशत तक बढ़ गया। भारत अपनी जरूरत का 98 प्रतिशत का उत्पादन करके खाद्य तेल में आत्मनिर्भर हो गया। इस प्रकार खाद्य तेल का आयात वर्ष 1986–87 में 15 लाख टन से घटकर वर्ष 1992–93 में एक लाख टन रह गया। पर खाद्य तेल उत्पादन में भारत की आत्मनिर्भरता ज्यादा दिनों तक नहीं रही। विश्व बैंक के ढांचागत समायोजन कार्यक्रम के दबाव में आकर भारत ने वर्ष 1994–95 में खाद्य तेल के व्यापार का चरणबद्ध तरीके से उदारीकरण शुरू किया। ये वही समय था जब मलेशिया, इण्डोनेशिया, अर्जेंटीना और ब्राजील जैसे खाद्य तेल निर्यातक देश, भारत के बाजार को अपने पामोलीन (palmolein) और जीनात्रित (genetically engineered) सोयाबीन तेल से भरने को तैयार बैठे थे। एक दशक के अन्दर व्यापार उदारीकरण ने पूरी स्थिति को उलट कर रख दिया और भारत आत्मनिर्भरता से खाद्य तेल आयातक देश में बदल गया। उस समय खाद्य तेल के क्षेत्र में भारत ने निम्नलिखित कदम उठाए:

- पामोलीन तेल के आयात को वर्ष 1994 में 'खुले सामान्य लाइसेंस' (open general license) की श्रेणी में डालकर खाद्य तेल के आयात के ऊपर से राज्य का एकाधिपत्य खत्म कर दिया गया। इनके ऊपर अब बुनियादी सीमा प्रशुल्क (या आयात प्रशुल्क) का 65 प्रतिशत ही लगता है। बाद में अन्य खाद्य तेलों के आयात को भी इसी तरह से 'खुले सामान्य लाइसेंस' की श्रेणी में डाल दिया गया।
- WTO के अन्तर्गत सभी कच्चे और रिफाइंड खाद्य तेलों के ऊपर 300 प्रतिशत का सीमा प्रशुल्क है (सोयाबीन तेल को छोड़कर जिसमें सिर्फ 45 प्रतिशत है); पर फिर भी भारत ने खाद्य तेलों के आयात प्रशुल्क में तेजी से कटौती की। वर्ष 1994 में यह 65 प्रतिशत था जिसे वर्ष 1996 में घटाकर 20 प्रतिशत कर दिया गया और वर्ष 1998 तक यह 15 प्रतिशत ही रह गया।
- मात्रात्मक प्रतिबन्धों को घटा दिया गया और उन्हें आयात प्रशुल्क में बदल दिया गया। यह सब कुछ कथित रूप से WTO के अन्तर्गत 'बाजार में पहुंच' की बाध्यता के नाम पर किया गया पर हकीकत में यह अमेरिका के सूज़न एस्सरमन (वाणिज्य विभाग) और एन.एन.खन्ना (वाणिज्य मंत्रालय, भारत सरकार) के बीच एक द्विपक्षीय वार्ता के दौरान बेहद गैर-लोकतांत्रिक और गैर-पारदर्शी रूप से किया गया था। इस वार्ता के दौरान यह तय किया गया कि 1429 वस्तुओं से मात्रात्मक प्रतिबन्धों को 1 अप्रैल 2000 से 1 अप्रैल 2001 के बीच हटा दिया जाएगा।

खाद्य तेल नीति के उदारीकरण के दुःप्रभाव जल्दी ही सामने आने लगे थे। उदारीकरण के इन प्रयासों और वर्ष 1999 में आई अंतर्राष्ट्रीय खाद्य तेल की कीमतों में भारी गिरावट के कारण भारत में सस्ते खाद्य तेल खासकर सोयाबीन और पामोलीन तेल की 'डम्पिंग' होने लगी। वर्ष 2002–03 में खाद्य तेल का आयात 1992–93 की तुलना में, 1 लाख टन से बढ़कर 43 लाख टन हो गया। इस प्रकार इन 10 वर्षों में

खाद्य तेल के ऊपर की आत्मनिर्भरता, जो वर्ष 1994-95 में 98 प्रतिशत थी, वर्ष 2002-03 में घटकर 53 प्रतिशत हो गई। दूसरी तरफ 2002-03 में कुल कृषि आयात में से 6 प्रतिशत आयात खाद्य तेलों का हो रहा था, जो 1991-92 में बढ़कर 52 प्रतिशत हो गया। भारत खल्ली (oil meal) का निर्यातक देश था पर इसका निर्यात वर्ष 1993-94 में 48.4 लाख टन से घट कर 2002-03 में 16.1 लाख टन हो गया। सस्ते आयातित तेलों की बाढ़ से तिलहन की कीमतों में भारी गिरावट आई जिसका भारतीय तिलहन किसानों के ऊपर विनाशकारी प्रभाव हुआ। वर्ष 1999 में अखबारों में छपा कि किसान भारी मात्रा में अपने तिलहन उत्पाद को न्यूनतम समर्थन मूल्य से भी कम कीमत पर बेचने को मजबूर हैं। पर फिर भी सरकार ने कोई भी हस्तक्षेप नहीं किया। जब उचित मूल्य मिलना बन्द हो गया तो किसानों के पास और कोई उपाय नहीं था, उन्होंने तिलहन की फसल लगाना कम कर दिया। यहीं नहीं WTO के बाद घरेलू उत्पादन में अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में उतार-चढ़ाव के कारण काफी अस्थिरता भी आ गई।

नारियल अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

नारियल तेल को 'खुले सामान्य लाईसेंस' (open general license) की श्रेणी में डालने पर और 90 के दशक में आयात प्रशुल्क कम करने के बाद नारियल की कीमतें तेजी से गिरी। नारियल तेल की औसत कीमत वर्ष 1996-97 में 5553 रुपये प्रति क्विंटल (1 टन = 10 क्विंटल) से घटकर, सितम्बर 2000 में मात्र 2500 रुपये प्रति क्विंटल ही रह गई। वर्ष 2000 से 2005 के बीच, यह कीमत 6758 रुपये प्रति क्विंटल तक पहुंच गई थी। वर्ष 2005-06 में घट कर 5078 रुपये प्रति क्विंटल हो गई और 2007 मार्च तक यह और घट कर 4800 रुपये प्रति क्विंटल हो गई। यहां तक की कच्चे नारियल की कीमत 1995 के आसपास 10 रु. प्रति नग था, जो वर्ष 2000 में गिरकर 2-3 रु. प्रति नग हो गया। नारियल के गिरते दाम किसानों के लिए गम्भीर चिंता का विषय था क्योंकि इनकी रोजाना की नकद कमाई काफी कम हो गई थी। प्रत्येक वर्ष नारियल की कीमतें गिरती जा रही थी। उदाहरण के लिए वर्ष 1988-89 में इनकी कीमत 450 प्रति सैकड़ा (4.5 रु. प्रति नग) थी, वर्ष 1997-98 में थोड़ा बढ़कर 650 रु. प्रति सैकड़ा हो गई, पर 2007-08 में यह गिरकर 450 रु. और 2009-10 में मात्र 275 रु. प्रति सैकड़ा हो गई।

90 के दशक से नारियल की कीमतों में गिरावट का मुख्य कारण है कच्चे व रिफाइंड पामोलीन तेल के प्रशुल्क में लगातार कटौती। वर्ष 1994 से 2005 तक पामोलीन तेल की प्रशुल्क दरों को 11 बार बदला गया, जिससे स्वाभाविक रूप से नारियल और उसके उत्पादों की कीमतों की स्थिरता पर असर पड़ा। एक बड़ा झटका अप्रैल 2008 में लगा जब सारे कच्चे खाद्य तेल पर आयात प्रशुल्क पूरी तरह से हटाकर शून्य कर दिया गया। रिफाइंड तेलों के प्रशुल्क को भी घटा कर 7.5 प्रतिशत कर दिया गया। कारण यह बताया गया कि बढ़ती महंगाई और खाद्य तेल की बढ़ती मांग से निपटने के लिए ऐसा करना जरूरी था। पर इससे खाद्य तेलों के आयात में तेजी से वृद्धि हुई। वर्ष 2007-08 में आयात 56.1 लाख टन से बढ़कर वर्ष 2009-10 में 88.2 लाख टन हो गया।

वर्ष 2009 और 2011 के बीच दो बड़े बदलाव आए जिससे यह स्थिति और भी खराब हो गई। इन बदलावों की वजह से दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों से, खासकर मलेशिया और इंडोनेशिया से भारी मात्रा में ताड़ के तेल (पामोलीन) के आयात में वृद्धि हुई। ये बदलाव हैं —(i) भारत और आसियान देशों के बीच मुक्त

व्यापार समझौता, जिसे 13 अगस्त 2009 को बैंकाक में किया गया और जो 1 जनवरी 2010 से लागू हुआ; और (ii) 11 जून 2011 को भारत और मलेशिया के बीच 'वृहद आर्थिक सहकारिता समझौता' (Comprehensive Economic Cooperation Agreement)।

नीचे दी गई तालिका में यह दर्शाया गया है कि आसियान देशों के साथ व्यापार उदारीकरण का भारत पर क्या असर पड़ा। इस तालिका से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ताड़ का तेल या पामोलीन का आयात कुल आयात के 67 प्रतिशत से भी ज्यादा है। इसके बाद दूसरे स्थान पर सोयाबीन (17 प्रतिशत) और सूर्यमुखी का तेल है (13 प्रतिशत) वर्ष 2013-14 में।

तालिका :

वर्ष (नवम्बर- अक्टूबर)	रिफाइंड तेल	कच्चा तेल				कुल
	आर.बी.डी. पामोलीन	ताड़ का तेल	सूर्यमुखी का तेल	सोयाबीन का तेल	अन्य	
2008-09	12.40	51.87	5.90	8.90	1.76	81.83
2009-10	12.13	51.69	6.30	16.66	1.40	88.23
2010-11	10.82	53.74	8.04	10.07	0.99	83.71
2011-12	15.77	59.94	11.35	10.79	1.96	99.81
2012-13	22.23	58.89	9.73	10.91	2.07	103.85
2013-14	15.76	62.53	15.09	19.51	3.29	116.18

स्रोत : राज्यसभा में श्री आनन्द शर्मा द्वारा 'खाद्य तेल के उत्पादन और मांग' के विषय में पूछा गया तारांकित प्रश्न संख्या 207, जिसका जबाव 7 अगस्त 2015 को कृषि मंत्री द्वारा दिया गया
http://nmoop.gov.in/Parliament_Question/PO_207_07-08-2015_Starred.pdf

दाल आयात पर बढ़ती निर्भरता

भारत विश्व में दाल का सबसे बड़ा उत्पादक भी है और उपभोगता भी। पूरे विश्व का 25 प्रतिशत दाल का उत्पादन यहीं होता है, और विश्व के 27 प्रतिशत दाल की खपत भी यहीं होती है। मजेदार बात तो यह है कि दालों का सर्वाधिक आयात (15 प्रतिशत) करने वाला देश भी भारत ही है।

'वाणिज्यिक आसूचना और सांख्यिकी के महानिदेशालय' (Directorate General of Commercial Intelligence and Statistics) के अनुसार वर्ष 2001-02 में भारत ने 22 लाख टन दालों का आयात किया, जो वर्ष 2004-05 में घट कर 13 लाख टन हो गया। वर्ष 2004-05 के बाद से दालों का आयात लगातार बढ़ा है, और वर्ष 2012-13 तक यह बढ़कर 38 लाख टन हो गया।⁸ मूल्य के आधार पर, वर्ष 2001-02 में कुल 70 करोड़ अमेरिकी डॉलर की दालों का आयात हुआ। यह वर्ष 2012-13 में बढ़ कर 230 करोड़ अमेरिकी डॉलर हो गया। ऐसा इसलिए सम्भव हो पाया क्योंकि दालों को खुले सामान्य लाईसेंस की श्रेणी में

⁸ <http://www.thehindubusinessline.com/economy/agri-business/pulses-import-surges-to-record-41-mt/article7154938.ece>

डाल दिया गया। भारत पिछले 37 वर्षों⁹ से दालों का आयात करता आ रहा है। करीब 25 वर्ष पहले मात्र 4 लाख टन दालों का आयात हुआ था। पूरी सम्भावना है कि इस वर्ष यह बढ़ कर 55 लाख टन हो जाएगा। इतनी अधिक मात्रा में दालों का आयात इसलिए भी सम्भव हो पाया क्योंकि भारत ने अपना आयात प्रशुल्क काफी कम कर दिया है। जून 2001 में यह आयात प्रशुल्क 5 प्रतिशत था। यह बढ़कर मार्च 2003 में 10 प्रतिशत हो गया। पर जून 2006 के बाद से इसे पूरी तरह से खत्म कर दिया गया। आयात प्रशुल्क नहीं होने की वजह से वर्ष 2014–15 में सबसे ज्यादा 41 लाख टन दालों का आयात हुआ जो अपने आप में एक रिकॉर्ड है। इतनी बड़ी मात्रा में दालों का आयात होने के बावजूद भी दाल की कीमतें आसमान छू रही हैं। पिछले 2–3 वर्षों में दालें 3 गुना ज्यादा महंगी हो गई हैं। उदाहरण के लिए दिल्ली में नवम्बर 2015 के महीने में अरहर दाल 205 रु. प्रति किलो बिक रही थी। ज्यादा दाम होने के कारण सरकार ने और अधिक मात्रा में दालों का अतिरिक्त आयात किया, यह जानते हुए भी कि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में दालों की कमी है और ज्यादातर दाल उत्पादक देश महंगी दाल बेच रहे हैं। दालों के दाम बढ़ने की वजह से गरीबों को उनके एकमात्र प्रोटीन के स्रोत से वंचित रहना पड़ रहा है। इस वजह से देश की बड़ी जनसंख्या के ऊपर पोषण की असुरक्षा का खतरा मंडरा रहा है।

कपास: व्यापार जनित संकट की पुरानी कहानी

वर्ष 2014–15 में फिर से कपास की अंतर्राष्ट्रीय कीमत में गिरावट आई। इस प्रकार की गिरावट वर्ष 2002–06 के बीच भी देखी गई थी। कीमत कम होने के कारण भारतीय कपड़ा मिल व्यापारी ज्यादा मात्रा में कपास आयात करने को मजबूर हो गए। वहीं किसानों को बचाने के लिए सरकार को उनके उत्पादों को न्यूनतम समर्थन मूल्य में खरीदने के लिए बाध्य होना पड़ा। काफी समय से कपास की अंतर्राष्ट्रीय कीमत घरेलू बाजार की कीमत से बहुत कम है। इस वजह से वर्ष 2013–14 के मुकाबले वर्ष 2014–15 में कपास के निर्यात में मूल्य के आधार पर 48 प्रतिशत गिरावट आई। साथ ही कपास का आयात 12.71 लाख गांठों¹⁰ (Bales) से बढ़कर वर्ष 2014–15 में 15.22 लाख गांठ हो गया।¹¹ जनवरी 2015 में कपास की कीमतें अंतर्राष्ट्रीय बाजार में गिर कर 57.05 सेंट प्रति पाउंड हो गईं।¹² पिछले 5 वर्षों में यह सबसे कम कीमत है। जब से कृषि को 'मुक्त' वैश्विक व्यापार के लिए खोला गया है, कपास की कीमतें अंतर्राष्ट्रीय बाजार में लगातार गिरती जा रही हैं।

भारतीय कपास उत्पादकों को 2000 दशक की शुरुआत से ही व्यापार उदारीकरण के कड़वे अनुभव मिलने लगे थे। घरेलू बाजार के खुलने के बाद से भारतीय कपास उत्पादकों का मुकाबला पश्चिम के, विशेष रूप से अमेरिका के कपास उत्पादकों के साथ होने लगा जिन्हें वहां अत्याधिक सब्सिडी मिलती है। साथ ही हमारे किसानों पर अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कीमतों के उतार-चढ़ाव का बोझ बढ़ने लगा। यही नहीं, भारत के घरेलू बाजार में विदेशी कपास सस्ते दामों में आने लगे। भारत का आयात प्रशुल्क काफी कम होने की वजह से विदेशी उत्पादकों के लिए यह सब बड़ा आसान था क्योंकि भारी सब्सिडी मिलने के कारण उनके उत्पाद काफी सस्ते थे।

⁹ <http://www.orissadiary.com/ShowBusinessNews.asp?id=62336>

¹⁰ (1 गांठ (bale) = 170 किलो, 1 पाउंड = 453.59 ग्राम या 1 किलो = 2.2 पाउंड) (1000 किलो = 1 टन)

¹¹ http://agricoop.nic.in/imagedefault/trade/CTN_172.pdf

¹² <http://www.bloomberg.com/news/articles/2015-02-04/india-farmer-suicides-on-rise-as-cotton-slump-spurs-debts>

अमेरिका अपने करीब 25,000 कपास उत्पादकों को वर्ष 1998–2002 के बीच 14.8 बिलियन (या 1480 करोड़)¹³ अमेरिकी डॉलर की सब्सिडी दी। ऐसा करके कपास के दाम जान-बूझ कर गिरा दिए जाते हैं ताकि अंतर्राष्ट्रीय कपास बाजार के ऊपर अमेरिका का कब्जा हो जाए। पहले इन बाजारों में बुर्किना फासो, बेनिन, माली जैसे गरीब अफ्रीकी देशों से माल आता था। पर अब अमेरिका के सामने कोई भी नहीं टिक पाता। इसी वजह से अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कपास की कीमत लगातार घटती जा रही है। वर्ष 1994 में कपास की कीमत 1.10 अमेरिकी डॉलर प्रति पाउंड थी जो वर्ष 1997 में घट कर 0.40 अमेरिकी डॉलर हो गई। वर्ष 1998–2000 में इसकी कीमत थोड़ी बढ़कर 0.47 अमेरिकी डॉलर हुई जो 2004–2005 में 0.50 अमेरिकी डॉलर हो गई। इतने कम दाम में कपास का उत्पादन हमारे यहां के सबसे कुशल उत्पादकों के लिए भी सम्भव नहीं था। अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति शोध संस्थान (International Food Policy Research Institute) ने वर्ष 2005 में अफ्रीकी देश, बेनिन के बारे में एक रिपोर्ट में बताया कि कीमतों में 40 प्रतिशत गिरावट होने से कपास के किसानों की आय 21 प्रतिशत कम हो जाएगी और ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी 6–7 प्रतिशत बढ़ जाएगी।¹⁴ इसी दौरान हमने भारत में भी देखा कि विदर्भ के कपास किसानों में कर्जदारी कितनी ज्यादा बढ़ गई है। इन्हीं कारणों से किसानों द्वारा की गई आत्महत्या की घटनाएं भी बढ़ी हैं।

अन्य विकासशील देशों से आयात लहर के मामले

आयातों में आई बाढ़ के विश्व भर में कई उदाहरण मिल जाएंगे। संयुक्त राष्ट्र के 'खाद्य और कृषि संगठन' (Food and Agriculture Organisation) ने वर्ष 2003 तक इस प्रकार की आयातों में आई अचानक बाढ़ का अध्ययन किया। वर्ष 1980 से 2003 के बीच 'खाद्य और कृषि संगठन' ने पाया कि 102 विकासशील देशों के करीब 23 खाद्य समूहों पर 7132 से लेकर 12,167 बार आयातों में बाढ़ आई। इससे यह पता चलता है कि ज्यादा से ज्यादा देश जो पहले खाद्य निर्यातक थे वे अब खाद्य अभाव से ग्रस्त होकर खाद्य आयातक होते जा रहे हैं। वर्ष 2000 की तुलना में वर्ष 2007 में कम विकसित देशों (Least Developed Countries) का खाद्य आयात खर्च करीब 90 प्रतिशत ज्यादा था। इसी दौरान विकासशील देशों में खाद्य आयात खर्च 22 प्रतिशत बढ़ा। वर्ष 2007 में विश्व खाद्य आयात खर्च 745 अरब अमेरिका डॉलर था। यह वर्ष 2006 के मुकाबले 21 प्रतिशत ज्यादा था। इसमें से 233 अरब अमेरिकी डॉलर का खर्च विकासशील देश करते हैं। 'खाद्य और कृषि संगठन' ने गरीब विकासशील देशों को पहले ही चेतावनी दे दी थी कि इस प्रकार से बढ़ते खाद्य आयात खर्च का सीधा असर खाद्य खपत के ऊपर पड़ेगा जिससे कुपोषण की स्थितियां और गम्भीर होती जाएंगी।¹⁵

'खाद्य और कृषि संगठन' की रिपोर्ट¹⁶ में खाद्य आयात में आई बाढ़ के कई उदाहरण शामिल हैं जैसे – कीनिया में मक्का, चीनी, और दुग्ध उत्पाद; घाना में चावल, टमाटर और मुर्गी; केमरून में मुर्गी, चावल और वनस्पति तेल; तन्जानिया में चावल और दुग्ध उत्पाद; मोज़ाम्बीक में मुर्गी और वनस्पति तेल; कोटे डी आइवर में चावल, मुर्गी और चीनी; होंडुरस में चावल; फिलिपीन्स में तम्बाकू और प्याज; और श्रीलंका में दुग्ध उत्पादन।

¹³ http://cip.cornell.edu/DPubS/Repository/1.0/Disseminate?view=body&id=pdf_1&handle=dns.gfs/1200428204

¹⁴ <http://indiatgether.org/cotton-opinions>

¹⁵ http://geoinovae.data.quonia.cz/materially/ZX501_Globalni_problemy_svetove_ekonomiky_Setkani_c_2/ActionAid_2008_agro_import.pdf

¹⁶ <http://www.fao.org/docrep/014/i1952e/i1952e00.htm>

खाद्य आयातों में बाढ़ के कई कारण होते हैं जैसे व्यापार उदारीकरण, घरेलू या स्थानीय फसलों के समर्थन पर रोक, सरकार का निर्यात की ओर रुझान, मार्केटिंग बोर्ड का विघटन, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों (International Financial Institution) का दबाव और विनिमय दर में उतार-चढ़ाव इत्यादि। जब पश्चिमी अफ्रीकी देश, घाना ने चावल प्रशुल्क घटा कर 20 प्रतिशत कर दिया तो वहां चावल का आयात बढ़कर दोगुना हो गया। केमरून में प्रशुल्क 25 प्रतिशत घटाने पर वहां का मुर्गी (पोल्ट्री) आयात 6 गुना बढ़ गया। इनके अलावा भी कई अन्य कारण हैं, जैसे – डम्पिंग, निर्यातक देशों में सब्सिडी की भूमिका, खाद्य अनुदान, इत्यादि। यूरोपीय संघ की अत्यधिक सब्सिडी प्राप्त मुर्गी (पोल्ट्री) ने सेनेगाल की पोल्ट्री उद्योग को खत्म कर दिया। यूरोपीय संघ के ही दुग्ध निर्यात के कारण जामाईका, कीनिया, श्रीलंका और डोमिनिकन रिपब्लिक के हजारों छोटे किसान बर्बाद हो गये।¹⁷

खाद्य आयात के बाढ़ के भयानक मानवी और आर्थिक नुकसान होते हैं। इनके कारण विभिन्न विकासशील देशों में कृषि क्षेत्र में बेरोजगारी बढ़ी है। कई बार इनका असर गरीबी और खाद्य असुरक्षा में वृद्धि के रूप में भी देखा गया है क्योंकि ऐसे में छोटे किसान स्थानीय बाजार में अपने उत्पाद नहीं बेच पाते हैं। निम्नलिखित मामलों से यह और भी स्पष्ट हो जाएगा :

- **घाना** – टमाटर पेस्ट : पश्चिमी अफ्रीकी देश, घाना में यूरोपीय संघ से होने वाले टमाटर पेस्ट का आयात 650 प्रतिशत बढ़ गया। वर्ष 1998 में 3300 टन से बढ़कर वर्ष 2003 में 24,740 टन हो गया। फलस्वरूप, घरेलू बाजार में स्थानीय किसानों का हिस्सा 40 प्रतिशत ही रह गया और कीमतें काफी कम हो गईं।¹⁸
- **केमरून** – पोल्ट्री : वर्ष 1999 से 2004 के बीच केमरून में पोल्ट्री का आयात 300 प्रतिशत बढ़ गया। इस वजह से करीब 92 प्रतिशत पोल्ट्री किसानों को यह व्यवसाय छोड़ना पड़ा। वर्ष 1994 से 2003 तक हर साल 110,000 ग्रामीण रोजगार खत्म होते गए।¹⁹
- **कोटे डी आइवर** – पोल्ट्री : वर्ष 2001 से 2003 के बीच कोटे डी आइवर (अफ्रीका) में पोल्ट्री आयात 650 प्रतिशत बढ़ गया। फलस्वरूप कीमतें गिर गईं; 1500 उत्पादकों ने उत्पादन रोक दिया और करीब 15,000 रोजगार खत्म हो गए।²⁰
- **मोज़ाम्बिक** – वनस्पति तेल : वर्ष 2000 से 2004 के बीच मोज़ाम्बिक में वनस्पति तेल के आयात(ताड़, सोया, और सूर्यमुखी) में 5 गुना वृद्धि हुई। घरेलू उत्पादन तेजी से गिर गया। वर्ष 1981 में 21,000 टन से घट कर वर्ष 2002 में मात्र 3,500 ही रह गया। तिलहन उगाने वाले 1,08,000 छोटे किसान और उससे जुड़े उत्पाद (सोयाबीन, कोपरा) बनाने वाले करीब 10 लाख परिवार बुरी तरह से प्रभावित हुए। हजारों की संख्या में रोजगार खत्म हो गए।²¹

¹⁷ http://geoinovae.data.quonia.cz/materially/ZX501_Globalni_problemy_svetove_ekonomiky_Setkani_c_2/ActionAid_2008_agro_import.pdf

¹⁸ <http://www.fao.org/docrep/014/i1952e/i1952e07.pdf>

¹⁹ <http://ftp.fao.org/docrep/fao/009/ah627e/ah627e00.pdf>

²⁰ <http://www.fao.org/docrep/014/i1952e/i1952e07.pdf>

²¹ <http://ftp.fao.org/docrep/fao/009/ah627e/ah627e00.pdf>

- **जमाईका** – दुग्ध उत्पाद : 1990 के दशक के दौरान हुए उदारीकरण के कारण बढ़े दुग्ध उत्पादन के आयात से करीब 50 प्रतिशत दुग्ध उत्पादक ने अपने मवेशियों को बेच दिया और यह धंधा छोड़ने को मजबूर हो गए। इस क्षेत्र में वर्ष 1990 के मुकाबले 2004 में रोजगार दो-तिहाई से भी कम हो गए।²²
- **श्रीलंका** – दुग्ध उत्पाद : श्रीलंका में दुग्ध उत्पादों का आयात वर्ष 1981 में 10,000 टन से बढ़कर वर्ष 2005 में 70,000 टन हो गया। इसने स्थानीय बाजार के 70 प्रतिशत हिस्से पर कब्जा कर लिया। घरेलू उत्पादक ऐसे में अपने आप को ढाल नहीं पाए। इस दौरान स्थानीय उत्पादन में 15 प्रतिशत से भी कम वृद्धि हुई।²³
- **सेनेगल** – पोल्ट्री : मुर्गी आयात प्रशुल्क को 60 प्रतिशत से घटाकर 20 प्रतिशत करने पर वर्ष 1993 से 2003 के बीच स्थानीय पोल्ट्री उद्योग का 70 प्रतिशत हिस्सा खत्म हो गया। इस वजह से पोल्ट्री आयात में 11 गुना वृद्धि देखने को मिली। कुल आयात का तीन-चौथाई हिस्सा केवल यूरोपीय संघ से जमे हुए मुर्गी के मांस (Chicken Legs) के रूप में आने लगा। इन्हें स्थानीय मुर्गीयों से आधे दाम में बेचा गया। इस वजह से स्थानीय बाजार में मुर्गीयों के दाम गिर गए और स्थानीय मुर्गी उत्पादन घट कर एक-तिहाई हो गया। करीब 2000 रोजगार खत्म हो गए, 10 में से 7 पोल्ट्री फार्म बंद हो गए। छोटे किसानों के ऊपर इसके गंभीर नकारात्मक प्रभाव देखने को मिले। पोल्ट्री उद्योग में मंदी के कारण वहां के मक्का किसानों को भी काफी नुकसान झेलना पड़ा।²⁴
- **हैती** – चावल : वर्ष 1995 में अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने हैती को चावल आयात प्रशुल्क कम करने के लिए मजबूर कर दिया। दबाव में आकर हैती ने चावल आयात प्रशुल्क को 50 प्रतिशत से घटा कर 3 प्रतिशत कर दिया। क्लिंटन का दावा था कि यह कदम हैती को 'औद्योगिक युग' में प्रवेश करने में सहायक सिद्ध होगा। ज्यादातर चावल क्लिंटन के निजी राज्य अर्कांसस (Arkansas) से आयात होने लगे। क्लिंटन की नीति को स्वीकार करने के बाद, हैती अमेरिका से चावल आयात करने वाला चौथा सबसे बड़ा देश बन गया बावजूद इसके कि वह पश्चिमी गोलार्ध का सबसे गरीब देश था। हैती की धान की खेती पूरी तरह से खत्म हो गई जिसने हैती की खाद्य आत्मनिर्भरता को नष्ट कर दिया।

वर्ष 2011 में जब बिल क्लिंटन हैती के लिए संयुक्त राष्ट्र के विशेष प्रतिनिधि बने तो उन्होंने हैती को अमेरिकी चावल पर आयात प्रशुल्क हटाने को लेकर मजबूर करने के लिए सार्वजनिक रूप से माफी मांगी।²⁵ उन्होंने कहा – "अर्कांसस के मेरे कुछ किसान भाईयों को इससे फायदा हुआ होगा पर हैती के लिए यह फायदेमंद सिद्ध नहीं हुआ। यह एक गलती थी। यह ऐसी गलती थी जिसमें मैं भी शामिल था। मैं किसी और पर उंगली नहीं उठा रहा। यह मैंने खुद किया था। अब मुझे हर दिन इस बोझ के साथ जीना होगा कि मेरी वजह से हैती में किसान धान की खेती की क्षमता खो बैठे हैं।"²⁶

²² <http://ftp.fao.org/docrep/fao/009/ah629e/ah629e00.pdf>

²³ <http://www.fao.org/3/a-ah761e.pdf>

²⁴ www.fao.org/docrep/014/i1952e/i1952e.pdf

²⁵ <http://www.worldfuturefund.org/reports/haiti/clintonhaiti.html>

²⁶ http://democracynow.org/2010/4/1/clinton_rice

विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organization) —

WTO के बारे में जानना हमारे लिए काफी जरूरी है, क्योंकि जिस प्रकार के नियम और समझौते इसके अंतर्गत लिए जाते हैं उसका असर सीधे हमारे देश, उसके लोग, उसकी अर्थव्यवस्था और हमारी जिंदगी के ऊपर पड़ता है। जो हम खाते हैं, पहनते हैं और खरीदते-बेचते हैं— यह सब कुछ इससे जुड़ा हुआ है।

WTO क्या है ?

WTO एक बहुपक्षीय संस्था है। इसका गठन व्यापार का उदारीकरण और मुक्त व्यापार को बढ़ावा देने के लिए किया गया था। WTO के अनुसार वह एक मात्र ऐसी अंतर्राष्ट्रीय संस्था है, जो विभिन्न देशों के बीच व्यापार के नियमों को लेकर कार्य करती है। इसका मुख्य कार्य यह सुनिश्चित करना है कि व्यापार सुगम और मुक्त रूप से चलता रहे। इस बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के केन्द्र में WTO के समझौते हैं जिन पर विश्व के अधिकतर देशों ने हस्ताक्षर किये हैं।²⁷ ये समझौते विभिन्न देशों के बीच व्यापार का कानूनी ढांचा तैयार करते हैं, और अपने सदस्य देशों के व्यापार संबंधी अधिकारों की रक्षा करते हैं। आज WTO विश्व की सबसे शक्तिशाली नव उदारवादी व्यापार संस्थान है। व्यापार समझौतों से जुड़े मामलों में यह देशों की सरकारों द्वारा लिए गए निर्णयों को भी बदलने में सक्षम है।

WTO का गठन 1995 में हुआ, लेकिन पिछले 50 वर्षों से इसका स्वरूप 'जनरल एग्रीमेंट ऑन टेरिफ एण्ड ट्रेड' (गैट) के माध्यम से धीरे-धीरे तैयार हो रहा था। दूसरे विश्व युद्ध के बाद, जुलाई 1944 में अमेरिका के न्यू हैम्पशायर में संयुक्त राष्ट्र मौद्रिक और वित्तीय सम्मेलन हुआ। इसे ब्रेट्टन वुड्स (Bretton Woods) सम्मेलन के नाम से भी जाना जाता है। इस सम्मेलन का आयोजन अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा और वित्तीय व्यवस्था को नियमित करने के लिए किया गया था। इसमें 44 देशों से 730 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन के परिणाम स्वरूप 'पुनर्निर्माण और विकास के लिए अंतर्राष्ट्रीय बैंक' (या विश्व बैंक) और 'अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश' (आई.एम.एफ) का गठन हुआ। तत्पश्चात् यह तय किया गया कि अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहकारिता के लिए एक तीसरी संस्था का गठन किया जाएगा। मार्च 1948 को हवाना (क्यूबा) में आयोजित 'व्यापार और रोजगार पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन' में 'अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन' (आई.टी.ओ) (International Trade Organisation) की स्थापना को लेकर चर्चा हुई। यह तीसरा ब्रेट्टन वुड्स संस्थान था और बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था की देख-रेख के लिए इसे निर्णय लेने और विवाद निपटान (dispute settlement) के लिए जरूरी शक्तियां भी देने का प्रस्ताव था। लेकिन 1950 में अमेरिका की सिनेट ने 'हवाना चार्टर' को मानने से इंकार कर दिया। इस प्रकार आई.टी.ओ बनने से पहले ही खत्म हो गया।

जिस वक्त आई.टी.ओ के प्रारूप पर बातचीत हो रही थी और देश यह विचार कर रहे थे कि वे इस संगठन के साथ जुड़ेंगे या नहीं, उसी वक्त 23 देशों के प्रतिनिधियों ने जेनेवा में 'गैट' के रूप में एक अनंतिम समझौता (provisional agreement) अपनाया। इसका उद्देश्य सफलतापूर्वक व्यापार का उदारीकरण और मुक्त व्यापार के सिद्धांत पर आधारित विश्व बाजार स्थापित करने के लिए आयात और निर्यात प्रशुल्कों को कम करने का था। इस अस्थाई बहुपक्षीय समझौते का मुख्य लक्ष्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने का था और

²⁷ https://www.wto.org/english/thewto_e/whatis_e/inbrief_e/inbr00_e.htm

साथ ही 1930 के महामंदी (great depression) के दौर में लिए गए संरक्षणवादी उपायों से हुए नुकसान की भरपाई करना था। इस समझौते को 1 जनवरी 1948 से लागू किया जाना था और यह तभी तक रहता जब तक आई.टी.ओ की स्थापना नहीं हो जाती। वर्ष 1995 में WTO के गठन तक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को संचालित करने वाला यह एकमात्र बहुपक्षीय उपकरण था।

गैट समझौता बाध्यकारी नहीं था। संयुक्त राज्य अमेरिका (और अन्य राष्ट्रों) ने गैट को इस शर्त पर स्वीकार किया कि इसके प्रावधान तभी तक बाध्यकारी होंगे जब तक वे देश के मौजूदा कानून के साथ असंगत न हों। इसे 'अंतिम प्रयोग का प्रोटोकॉल' (Protocol of Provisional Application)²⁸ कहा गया।

WTO के गठन से पहले गैट के तहत कई बार वार्ताएं हुईं। इनमें सितम्बर 1986 में उरुग्वे मंत्रिस्तरीय बैठक काफी महत्वपूर्ण थी। उरुग्वे दौर में कई जटिल मुद्दों पर बातचीत हुई पर इनके केन्द्र में अमेरिका, यूरोपीय संघ और जापान का प्रस्ताव था, जिसके माध्यम से ये गैट फ्रेमवर्क में बदलाव लाकर अंतर्राष्ट्रीय निवेश को सरकारों से नियंत्रण मुक्त करवाना चाहते थे।

उरुग्वे दौर 8 वर्षों (1986–1994) तक चलता रहा। इस दौरान 'व्यापार उदारीकरण' वैश्वीकरण के नए अवतार के रूप में उभरा। औद्योगिक प्रशुल्क और गैर-प्रशुल्क अवरोधों को हटा कर गैट ने व्यापार उदारीकरण को सुगम बनाया। उरुग्वे दौर इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसने व्यापार एजेंडा में औद्योगिक माल के साथ-साथ कृषि उत्पादों के व्यापार, सेवाओं का निजीकरण, बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की सुरक्षा को भी शामिल कर दिया। इसके साथ-साथ कॉर्पोरेट मुनाफे में बाधा उत्पन्न करने वाले राष्ट्रीय कानून और विनियमन को भी सफलतापूर्वक सीमित किया गया। दिसम्बर 1991 तक एक विस्तृत प्रारूप तैयार कर लिया गया जिसे 'फाईनल एक्ट' या 'डंकल प्रारूप' के नाम से भी जाना गया। इसका नाम आर्थर डंकल (1980–1993) के ऊपर पड़ा जो उस वक्त गैट के महानिदेशक थे। अप्रैल 1994 में मार्राकेश (मोरक्को) के मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में इस 'फाईनल एक्ट' को औपचारिक रूप से स्वीकृत कर लिया गया। इस प्रकार 1 जनवरी 1995 से WTO अस्तित्व में आया और इसने गैट की जगह ले ली।

मार्राकेश का 'फाईनल एक्ट' एक मुखपृष्ठ की तरह था। पर इसके साथ करीब 20 से भी ज्यादा समझौते संलग्न थे। इनमें सबसे पहले WTO को स्थापित करने वाला समझौता था। इसके अतिरिक्त 'माल के व्यापार पर बहुपक्षीय समझौते' (Multilateral Agreements on Trade in Goods) (जिसमें कई अन्य समझौते भी शामिल थे जैसे कृषि पर समझौता, सैनितरी (sanitary) और फाईटोसैनीटरी उपाय (phytosanitary measures), व्यापार के तकनीकी अवरोध, डम्पिंग विरोधी, सब्सिडी और काउंटरवेलिंग (countervailing) उपाय, सुरक्षण (safeguard) तथा अन्य); 'सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौता' (General Agreement on Trade in Services - GATS); और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के व्यापार सम्बंधित मुद्दे (Trade Related Aspects of Intellectual Property Rights –TRIPS)। 'फाईनल एक्ट' में अन्य महत्वपूर्ण निणर्य भी शामिल थे, जैसे –विवाद निपटान समझ (dispute settlement understanding), व्यापार नीति समीक्षा तंत्र (trade policy review mechanism), बहुपक्षीय व्यापार समझौते, इत्यादि। इनमें

²⁸ <https://eh.net/encyclopedia/from-gatt-to-wto-the-evolution-of-an-obscure-agency-to-one-perceived-as-obstructing-democracy-2/>

से एक समझौता सरकारी खरीद पर भी था। WTO समझौतों का मकसद व्यापार के अवरोधों को दूर करना था और ऐसी स्थितियां पैदा करनी थीं, जिसमें बड़े कॉर्पोरेट पूरे विश्व में मुक्त व्यापार कर सकें। इसमें माल के व्यापार के लिए प्रशुल्क अवरोधों को दूर करना अंतर्निहित है। गैर-प्रशुल्क व्यापार अवरोधों में स्वास्थ्य, पर्यावरण और श्रम कानून इत्यादि विषय शामिल हैं।

WTO की विशिष्टता

WTO कई प्रकार से गैट से अलग है। गैट का सम्बन्ध सिर्फ माल के व्यापार से था जबकि WTO में वैश्विक व्यापार के तीनों पहलू शामिल हैं : (1) माल का व्यापार; (2) सेवाओं का व्यापार; और (3) बौद्धिक सम्पदा (नई खोजों) का व्यापार। WTO की दूसरी खासियत उसकी विवाद निपटान प्रक्रिया है, जो अनुशासन और अनुपालन लागू करने के साथ-साथ व्यापार टकराव की सम्भावनाओं को कम करने का एक उपाय है। इसके जरिए अगर कोई सदस्य व्यापार समझौते का उल्लंघन करता है तो दूसरा सदस्य उसके ऊपर दंड, जुर्माना और प्रतिबन्ध लगा सकता है। कोई भी देश किसी अन्य देश को WTO के 'विवाद निपटान निकाय' (Dispute Settlement Body) में सुनवाई के लिए ला सकता है। परन्तु हकीकत यह है कि वर्ष 1995 से लेकर आज तक अधिकांश व्यापार विवादों में ज्यादातर फ़ैसले शक्तिशाली औद्योगिक देशों के पक्ष में ही लिए गए हैं। कई बार फ़ैसले राष्ट्रीय स्वास्थ्य और सुरक्षा, श्रम, मानव अधिकार और पर्यावरणीय कानून के खिलाफ भी लिए गए हैं, क्योंकि शक्तिशाली देशों द्वारा इन्हें व्यापार अवरोधों के रूप में पेश किया गया।

कई बार विकासशील देश WTO की धमकी से डरकर और दण्डात्मक प्रतिबन्धों से बचने के लिए अपनी जनहित नीतियों को बदलने के लिए मजबूर हो जाते हैं। यही नहीं 'विवाद निपटान निकाय' के आदेशों को राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा भी रोका नहीं जा सकता है। इस प्रकार कभी-कभी WTO का दर्जा राष्ट्र से भी बड़ा हो जाता है। गैट से अलग WTO एक कानूनी इकाई है और इसके समझौते बाध्यकारी हैं। WTO के समझौतों की सरकारों द्वारा संपुष्टि (Ratification) किया जाता है, जिसके कारण इसकी मान्यता वैधानिक हो जाती है। WTO के समझौते स्थाई होते हैं। WTO के सभी सदस्यों के पास बराबर अधिकार होते हैं, हरेक के पास एक वोट होता है और हर वोट का महत्व बराबर होता है।

WTO का सचिवालय जेनेवा (स्विटजरलैंड) में स्थित है और इसके महानिदेशक अभी रोबर्टो अजेवेडो हैं। WTO के सारे प्रमुख निर्णय मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में लिए जाते हैं, जो प्रत्येक 2 वर्षों में एक बार होता है। इस वक्त WTO के 162 सदस्य (30 नवम्बर 2015 तक) हैं। सदस्यों के अलावा करीब 22 देशों को प्रेक्षक पद (observer status) प्राप्त है, जो सदस्यता से पहले दिया जाता है। इस प्रकार विश्व के लगभग सभी देश WTO के साथ जुड़े हुए हैं। WTO में सभी प्रकार के देश शामिल हैं – पूंजीवादी, समाजवादी, अमीर और गरीब देश, औद्योगिक और विकासशील देश। WTO का बजट 16 करोड़ स्विस फ्रैंक है।²⁹ WTO के सदस्यों द्वारा किए गए कुल व्यापार के अनुपात में देशों का निजी सहयोग राशि निर्धारित की जाती है।

²⁹ http://www.wto.org/english/thewto_e/whatis_e/tif_e/org3_e.htm

अभी तक आयोजित WTO के मंत्रिस्तरीय सम्मेलन (Ministerial Conference) इस प्रकार हैं –

सम्मेलन	वर्ष	स्थान
I	9–13 दिसम्बर 1996	सिंगापुर
II	18–20 मई 1998	जिनेवा (स्विट्ज़रलैण्ड)
III	30 नवम्बर – 3 दिसम्बर 1999	सिएटल (अमेरिका)
IV	9–13 नवम्बर 2001	दोहा (कतार)
V	10–14 सितम्बर 2003	कैनकुन (मैक्सिको)
VI	13–18 दिसम्बर 2005	हांगकांग
VII	30 नवम्बर – 2 दिसम्बर 2009	जिनेवा (स्विट्ज़रलैण्ड)
VIII	15–17 दिसम्बर 2011	जिनेवा (स्विट्ज़रलैण्ड)
IX	3–6 दिसम्बर 2013	बाली (इंडोनेशिया)
X	15–18 दिसम्बर 2015	नैरोबी (कीनिया)

WTO के अन्तर्गत राष्ट्रों के कई समूह हैं :

- **कम विकसित देश (Least Developed Country)** : इनमें विश्व के सबसे गरीब देश शामिल हैं
- **छोटे और सन्वेदनशील अर्थव्यवस्थाएं (Small and Vulnerable Economies)** : इनमें WTO के वे सदस्य शामिल हैं, जिनका विश्व व्यापार में बहुत छोटा हिस्सा है तथा ये आर्थिक अनिश्चितताओं और पर्यावरणीय घटनाओं के प्रति काफी सन्वेदनशील हैं
- **अफ्रीकी, कैरिबियन और पैसिफिक देश (African, Caribbean and Pacific Countries - ACP)** : इस समूह के देशों का यूरोपीय संघ के साथ विशेषाधिकारों वाला व्यापार सम्बन्ध है, जो इन्हें लोमे (Lome) संधि (जिसे अब कोटोनाउ समझौता (Cotonou Agreement) कहा जाता है) के तहत प्राप्त हुआ था
- **अफ्रीकी समूह** : इसमें WTO के अफ्रीकी सदस्य देश शामिल हैं
- **कपास-4 (Cotton Four - C4)** : इनमें बेनिन, बुर्किना फासो, चाड, और माली शामिल हैं; पश्चिमी अफ्रीकी देशों का यह गठबंधन विकसित देशों में कपास की सब्सिडी और प्रशुल्क में कटौती की मांग करता है
- **जी-90 (G-90)** : इसमें अफ्रीकी समूह, ACP समूह (अफ्रीकी, कैरिबियन, पैसिफिक देश), और कम विकसित देश शामिल हैं
- **जी-33 (G-33)** : यह विकासशील देशों का गठबंधन है जो अपने लिए कृषि क्षेत्र में बाजार को पूरी तरह से नहीं खोलने की छुट की बात करता है; इस वक्त इसमें 33 से ज्यादा सदस्य हैं
- **जी-20 (G-20)** : यह विकासशील देशों का एक गठबंधन है जो विकसित देशों में कृषि के लिए महत्वाकांक्षी सुधार की बात करता है और साथ ही अपने लिए इसमें नरमी की आशा भी करता है (वित्त मंत्रियों और केन्द्रीय बैंक गर्वनरों का भी एक जी-20 समूह है पर वह इससे अलग है)

- **कैर्नस् (Cairns) समूह** : यह कृषि उत्पादों का निर्यात करने वाले राष्ट्रों का गठबंधन है जो कृषि व्यापार उदारीकरण की बात करता है; ये समूह निर्यात सब्सिडी और व्यापार को विकृत करने वाली सब्सिडियों को पूरी तरह से खत्म करने की भी मांग करता है, इसीलिए इसमें अमेरिका, यूरोपीय संघ और जापान शामिल नहीं हैं

WTO में निर्णय लेने की प्रक्रिया

WTO के नियम कहते हैं कि प्रत्येक सदस्य देश के पास एक वोट है और अमीर देशों का वोट तथा गरीब देशों के वोट एक बराबर हैं। परन्तु WTO में आमतौर पर वोटिंग के आधार पर नहीं बल्कि आम सहमति से फैसले लिए जाते हैं। अन्य शब्दों में, जब तक सभी देशों की सहमति न हो कोई भी निर्णय नहीं लिया जा सकता है। बाद में प्रत्येक देश को अपनी संसद द्वारा इन समझौतों की संपुष्टि (ratify) करनी होती है। साथ ही WTO के अन्दर जिस प्रकार से ये निर्णय लिए जाते हैं, उनमें जोड़-तोड़ और हथकण्डों का भी इस्तेमाल होता है। कई बार देशों के ऊपर दबाव डालकर या उन्हें मजबूर करके भी निर्णय लिए जाते हैं और उस वक्त सहभागिता, पारदर्शिता, साझेदारी और लोकतंत्र जैसे सिद्धांत धरे रह जाते हैं। हालांकि WTO में 162 सदस्य देश हैं पर सभी महत्वपूर्ण निर्णय एक छोटे चुने हुए देशों के समूह द्वारा लिया जाता है जिसे 'ग्रीन रूम' या 'फ्रेंड्स ऑफ द चेयर' (सभापति के हितैशी) कहा जाता है। आज तक कभी भी WTO के अन्दर किसी भी निर्णय पर वोटिंग नहीं हुई है। इस तरह अंदाजा लगाया जा सकता है कि WTO कहीं से भी लोकतांत्रिक संस्थान नहीं है। सभी मंत्रिस्तरीय बैठकों में अमेरिका, यूरोपीय संघ के देश, जापान और कनाडा का दबदबा बना रहता है। इन चारों को कई बार 'चौकड़ी' (Quadilateral) या 'कुआड' (Quad) भी कहते हैं। दोहा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन के बाद से विकासशील देशों ने मजबूती से अपनी बातों को रखना शुरू कर दिया था। कृषि समझौते के क्षेत्र में जी-33 और जी-20 की भूमिका और ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई है। इस प्रकार ब्राजील, भारत, और आस्ट्रेलिया भी (Cairns समूह के प्रतिनिधि के रूप में) इस 'नए कुआड' (the New Quad) में शामिल हो गए हैं। इसके अलावा 'छोटी मंत्रिस्तरीय' (mini ministerial) बैठकों की प्रक्रिया भी जनतांत्रिक नहीं है। वर्ष 2002 से 2010 तक मंत्रिस्तरीय सम्मेलनों से पहले, कई 'छोटी मंत्रिस्तरीय' बैठकें हुईं, जहां एजेंडा को पहले से तैयार करने के लिए सभी 6 देशों ने या कुछ खास देशों ने भाग लिया। इन 'छोटी मंत्रिस्तरीय' बैठकों में विकासशील देशों की सहभागिता नहीं के बराबर होती है। यहां तक की 'विवाद निपटान निकाय' भी सही मायने में जनतांत्रिक नहीं है। नियम के अनुसार कोई भी WTO का सदस्य किसी भी अन्य सदस्य को नियम उल्लंघन के आरोप में 'विवाद निपटान निकाय' में ला सकता है। परन्तु ऐसी संभावना बहुत कम है कि कोई गरीब देश कभी भी अमेरिका या यूरोपीय संघ जैसे शक्तिशाली देश के खिलाफ नियम उल्लंघन की शिकायत करे। दूसरी तरफ अमीर देशों के पास इतनी आर्थिक ताकत या शक्ति होती है कि वह किसी भी गरीब देश को डरा-धमका सकता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि औपचारिक रूप से भले ही WTO में बराबरी हो परन्तु यहां हमेशा अमीर देशों का ही पलड़ा भारी रहता है।

WTO के मौलिक सिद्धांत (Fundamental Principles) :

- (1) "सबसे पसंदीदा राष्ट्र" व्यवहार {**Most Favoured Nation (MFN) treatment**} : WTO के सदस्य देश अपने किसी भी व्यापारिक साझेदार के साथ कोई भेदभाव नहीं कर सकेंगे। सभी को बराबरी का दर्जा दिया जाएगा और सबके साथ 'सबसे पसंदीदा देश' के रूप में व्यवहार किया

जाएगा। उदाहरण के तौर पर, अगर कोई देश किसी दूसरे देश को कोई विशेष छुट देता है (जैसे किसी उत्पाद पर आयात प्रशुल्क पर छुट) तो उसे यह छुट WTO के सभी सदस्य देशों को देना होगा। इस सिद्धांत के अनुसार जब भी कोई देश किसी विशिष्ट सामान या सेवा के लिए अपना बाजार खोलेगा तो वह सभी सदस्यों पर लागू होगा। यह सिद्धांत GATS (Article 2) और TRIPS (Article 4) में भी लागू होता है।

हालांकि इस सिद्धांत में कहीं-कहीं छुट दी गई है, जैसे मुक्त व्यापार क्षेत्र, कस्टम यूनियन और विशेषाधिकारों वाली व्यवस्था। कुछ देश एक समूह बनाकर आपस में 'मुक्त व्यापार समझौता' (Free Trade Agreement) कर सकते हैं। ऐसे में दूसरे देशों के उत्पादों या माल के साथ भेद-भाव किया जा सकता है। इसके अलावा ऐसा भी हो सकता है कि सिर्फ विकासशील देशों को अपने बाजार तक विशेष प्रवेश दिया जाए; या सिर्फ उन देशों के प्रति व्यापार अवरोध खड़ा किया जाए जो अनुचित तरीके से व्यापार करते हैं।

- (2) **राष्ट्रीय व्यवहार (National Treatment)** : WTO का दूसरा मौलिक सिद्धांत है कि आयातित और स्थानीय उत्पादों या सेवाओं में कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। आयातित सामान के बाजार में पहुंचने के बाद, दोनों तरह के उत्पादों को समान दर्जा दिया जाएगा। आयात करते वक्त लगाए गए सीमा-प्रशुल्कों को इस सिद्धांत का उल्लंघन नहीं माना जाएगा बावजूद इसके कि स्थानीय उत्पादों के ऊपर इस तरह का कोई शुल्क नहीं लगता है। पर एक बार उत्पाद देश में प्रवेश कर जाए तो आयातित उत्पादों के ऊपर ऐसा कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आंतरिक कर या शुल्क नहीं लगाया जाएगा, जो वहां के स्थानीय उत्पादों पर नहीं लगते हों। यह सिद्धांत विदेशी और घरेलू सेवाओं और स्थानीय ट्रेडमार्क, कॉपीराइट और पेटेंट (जैसे एकाधिकार के कानून जो TRIPS में आते हैं) पर भी लागू होता है।
- (3) **विमुक्त व्यापार (Freer Trade)** : WTO का तीसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत विमुक्त व्यापार है – अर्थात् व्यापार अवरोधों को धीरे-धीरे कम करते हुए व्यापार को और मुक्त बनाना। व्यापार अवरोधों से आशय है – सीमा शुल्क (या प्रशुल्क), गैर-प्रशुल्क अवरोध (Non-Tariff Barrier) के साथ-साथ आयात निशेध या कोटा जिनसे मात्राओं पर प्रतिबन्ध लगता हो।
- (4) **पूर्वकथनीयता और पारदर्शिता (Predictability and Transparency)** : यह सिद्धांत विदेशी कम्पनियों, निवेशकों और सरकारों को यह आश्वस्त करता है कि व्यापार अवरोधों को मनमाने ढंग से नहीं बढ़ाया जाएगा तथा सभी व्यापार संबंधित नीतियों और विनियमन ढांचों को विदेशियों के लिए पारदर्शी रखा जाएगा। व्यापार व्यवस्था को टिकाऊ और पारदर्शी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सरकारें अपनी नीतियों और पद्धतियों को अपने देश में सार्वजनिक करें या कम से कम WTO को सूचित करें।
- (5) **निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा (Promotion of Fair Competition)** : इस सिद्धांत के अनुसार प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने के लिए व्यापार के अनुचित तरीकों को हतोत्साहित किया जाना चाहिए जैसे निर्यात में सब्सिडी या विदेशी बाजार में उत्पादों की डम्पिंग। 'डम्पिंग' तब होती है जब बाजार को अत्यधिक सब्सिडी वाले सस्ते उत्पादों से भर कर घरेलू बाजार से कम दाम में बेचा जाए। इस तरह

विदेशी बाजार के उद्योगों को काफी नुकसान पहुंचता है। WTO का मौलिक सिद्धांत होने के बावजूद विकसित देश इसका ठीक तरह से पालन नहीं करते हैं और वे अपने देश के अत्यधिक सब्सिडी वाले उत्पादों से विकासशील देशों के बाजार को भर देते हैं और उन्हें काफी कम कीमत पर बेचते हैं।

- (6) **विकास और आर्थिक सुधार को प्रोत्साहन (Encouragement of Development and Economic Reform)** : बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था में इस बात को स्वीकार किया गया है कि सभी देश बराबर नहीं हैं और इसलिए कम विकसित देशों के लिए विशेष प्रावधान होने चाहिए। उदाहरण के तौर पर, प्रशुल्क में कटौती के अनुरूप अपने आप को ढालने के लिए स्थानीय उद्योगों को ज्यादा वक्त मिलना चाहिए। इस तरह विकासशील देशों को WTO के जटिल प्रावधानों को अपनाने के लिए थोड़ा वक्त दिया जाता है। कम विकसित देशों को और भी ज्यादा वक्त दिया जाता है। उरुग्वे दौर में यह भी कहा गया है कि सक्षम देशों को कम विकसित देशों द्वारा निर्यात किए गए उत्पादों के लिए बाजार प्रवेश को सरल और सुगम बनाना चाहिए। इसके साथ-साथ इन देशों के लिए तकनीकी सहायता भी बढ़ाना चाहिए। इसीलिए कुछ विकसित देशों ने कम विकसित साझेदार देशों के उत्पादों के आयात को शुल्क-मुक्त और कोटा-मुक्त रखा है। हालांकि इस सिद्धांत का भी पूरी तरह से पालन नहीं हो रहा है। कम विकसित देश अभी भी अपने उत्पादों को विकसित देशों में शुल्क-मुक्त, कोटा-मुक्त (duty free, quota free) करवाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इसके साथ-साथ वर्ष 2001 में दोहा दौर के दौरान विकासशील देशों को 'विशेष और विभिन्न व्यवहार' देने का निर्णय लिया गया था, जिसको पाने के लिए अभी तक ये देश संघर्ष कर रहे हैं।
- (7) **एकमात्र प्रतिज्ञा (Single Undertaking)** : इस सिद्धांत के अनुसार WTO के समझौते का प्रत्येक विषय एक बड़े और अविभाज्य पैकेज का हिस्सा है जिसे अलग-अलग नहीं किया जा सकता। "जब तक सब कुछ स्वीकार न किया जाए तब तक कुछ भी स्वीकार नहीं होता" – अर्थात् WTO के सभी समझौतों को एक साथ एक ही प्रतिज्ञा के रूप में देखा जाता है। कोई भी सदस्य देश यह चयन नहीं कर सकता की वह किसी एक विशेष समझौते के साथ ही जुड़ेगा। WTO और उसके सभी समझौते एक ही पैकेज हैं जिसे सदस्य देश या तो पूरा स्वीकार करें या फिर जरा भी नहीं।

WTO के उद्देश्य (Objectives of WTO):

WTO की प्रस्तावना में उसके उद्देश्यों का स्पष्ट उल्लेख है। इसमें यह साफ-साफ कहा गया है कि WTO के सदस्य अपने व्यापार और आर्थिक संबंधों का इस प्रकार आचरण करेंगे जिससे लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि हो, सम्पूर्ण रोजगार सुनिश्चित हो, वास्तविक आय निरन्तर बढ़ती रहे और प्रभावी मांग (effective demand) में वृद्धि हो। इसके साथ-साथ सामान और सेवाओं के उत्पादन और व्यापार का विस्तार हो। यह सब कुछ वैश्विक संसाधनों का यथोचित इस्तेमाल और टिकाऊ विकास के सिद्धांतों के आधार पर होना चाहिये, जिससे पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण दोनों हो सके।

संक्षेप में WTO के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं:

- (1) सदस्य देशों के लोगों के जीवन स्तर में सुधार,
- (2) सम्पूर्ण रोजगार सुनिश्चित करना और प्रभावी मांग (effective demand) में व्यापक वृद्धि,

- (3) सामान के उत्पादन और व्यापार का विस्तार
- (4) सेवाओं के व्यापार को बढ़ाना,
- (5) वैश्विक संसाधनों का यथोचित (सबसे अच्छा) उपयोग सुनिश्चित करना,
- (6) पर्यावरण की सुरक्षा व संरक्षण, और
- (7) टिकाऊ विकास के सिद्धांत को स्वीकार करना

WTO की सच्चाई :

WTO के गठन के समय यह सोचा गया था कि इसका वैश्विक ढांचा विश्व के 99 प्रतिशत लोगों के लिए फायदेमंद सिद्ध होगा। यह अपने सभी सदस्य देशों को सकारात्मक विकास का एजेंडा और रोजगार के सृजन के क्षेत्र में उपयुक्त नीतिगत अवसर प्रदान करेगा। खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने, टिकाऊ विकास, सस्ती स्वास्थ्य सेवाएं और दवाईयों की उपलब्धता और वैश्विक वित्तीय स्थिरता के लिए हो रहे वैश्विक प्रयास WTO की मदद से और बेहतर व सुगम बनेंगे। यह भी सोचा गया था कि WTO में कोर्पोरेट मुनाफे के बजाए मानव अधिकार और पर्यावरण स्थिरता को ज्यादा महत्व दिया जायेगा।

परन्तु पिछले 20 वर्षों में WTO अपने वायदों को निभा पाने में नाकामयाब रहा है। इसके महान उद्देश्य अभी भी पूरे होने बाकी हैं। जबसे WTO द्वारा आर्थिक वैश्विकरण के दौर की शुरुआत हुई है तब से पूरे विश्व में गैर-बराबरी और बढ़ गई है। WTO को बनाया ही ऐसे गया है कि वास्तविक 'मुक्त' व्यापार (genuine free trade) कभी न हो सके। दरअसल, WTO "एकाधिकार प्रतिस्पर्धा" (monopolistic competition) को प्रोत्साहित करता है जिसमें शक्तिशाली खिलाड़ी का पलड़ा हमेशा भारी रहता है। 'कुआड' यानी अमेरिका, यूरोपीय संघ, जापान और कनाडा की 'चौकड़ी', हमेशा अपनी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हित का प्रतिनिधित्व करते हैं। WTO समझौते अब विकसित देशों की लड़ाई बनकर रह गए हैं जो अपनी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को फायदा पहुंचाने के लिए विकासशील देशों के बाजार को हथियाना चाहते हैं। कई बार इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का WTO के नियम बनाने या बदलने के पीछे सीधा हाथ होता है। इस प्रकार WTO का 'मुक्त व्यापार' केवल उत्तर के औद्योगिक और विकसित देशों के उत्पादकों, निर्माताओं और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए ही है जो दक्षिण में विकासशील देशों के बाजार को अपने कृषि उत्पादों, औद्योगिक माल और सेवाओं के लिए खोलना चाहते हैं। यही नहीं वे यहां का कच्चा माल और सस्ते मजदूरों का इस्तेमाल अपने उत्पादन और वितरण क्षमता को बढ़ाने के लिए भी करना चाहते हैं। दूसरी तरफ, अमीर देश कभी भी गरीब देशों के उत्पादों को अपने यहां आसानी से प्रवेश करने नहीं देते। विडम्बना इस बात की है कि विकासशील देश WTO में शामिल होने के लिए अपनी स्वतंत्र व्यापार नीति तक को छोड़ने को तैयार बैठे हैं। उन्हें लगता है कि WTO में शामिल होने से उनका घरेलू विकास, खाद्य सुरक्षा और संप्रभुता, तथा औद्योगिकरण को फायदा पहुंचेगा। कई देशों ने तो WTO को अपनी सरकार से भी ऊपर बैठा रखा है। जिस भी देश के कानून को WTO ने व्यापार अवरोधक घोषित कर दिया हो या जिन देशों को WTO के नाम की धमकी भर दे गई हो, उन सभी देशों ने डर के मारे तुरन्त अपनी नीतियों को बदल दिया। इन देशों ने आयात के ऊपर मात्रात्मक प्रतिबन्धों को खत्म कर दिया, कई कृषि और औद्योगिक उत्पादों के आयात पर प्रशुल्क घटा दिए, कई अन्य आयातों पर प्रशुल्क को वैसे ही रखा गया ताकि विदेशी कम्पनियां उनके घरेलू कम्पनियों के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकें।

विकासशील देश इस बात से भी सहमत हो गये कि भविष्य में भी वे अपनी उच्च-स्तरीय प्रौद्योगिकी और

तकनीकी—जानकारी को सीमित रखेंगे, जो किसी भी देश की आर्थिक क्षमता निर्माण के लिए अत्यावश्यक है। ऐसा उन्होंने बौद्धिक सम्पदा अधिकारों (Intellectual Property Rights) पर समझौतों और राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं को निवेश से दूर रखने का निर्णय लेकर किया। उदाहरण के रूप में, 'सेवाओं के व्यापार पर सामान्य समझौते' (General Agreement on Trade in Services) की शर्तों के अनुसार विदेशी सेवा प्रदाताओं और घरेलू प्रदाताओं के अधिकार बराबर होने चाहिए, चाहे उनका सम्बन्ध दूरसंचार, वित्त, स्वास्थ्य सेवा, जल या शिक्षा से हो। इस प्रकार यह समझौता न सिर्फ विदेशी सेवा प्रदाताओं को देश में घुसने का रास्ता साफ करता है बल्कि शिक्षा तथा जल सेवाओं से सम्बन्धित नियमों पर भी असर डालता है। 'सेवाओं के व्यापार पर सामान्य समझौते' के अंतर्गत, "राष्ट्रीय व्यवहार" (National Treatment) सिद्धांत के अनुसार घरेलू बाजार में स्थानीय उत्पादकों को कोई भी विशेषाधिकार नहीं दिए जाएंगे। उनकी क्षमताओं के निर्माण के लिए भी सरकार द्वारा अलग से कोई मदद नहीं दी जायेगी, जिससे वे औद्योगिक देशों के बाजार की प्रतिस्पर्धा में उतर सकें।

इसी प्रकार "बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के व्यापार सम्बन्धी समझौते" (Trade Related Aspects of Intellectual Property Rights-TRIPS) के अनुसार भी विकासशील देशों को बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की सुरक्षा करनी होती है, जैसे—पेटेंट, कॉपीराइट, ट्रेडमार्क, 'पौधों की विविधता संरक्षण अधिकार' (Plant Variety Protection Rights) इत्यादि। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की स्थापना WTO द्वारा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के फायदे के लिए की गई थी। इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पास सबसे ज्यादा पेटेंट हैं। इन पेटेंटों ने दवाईयों तथा अन्य उपयोगी जीवनप्रद उत्पादों को और महंगा बना दिया। इसके साथ-साथ जीन, बीज, पौधे, तथा अन्य जीवन-युक्त वस्तुओं का पेटेंट करके उनका निजीकरण और व्यवसायीकरण हो रहा है। WTO के नियमों के मुताबिक जीवन-युक्त वस्तुओं की भी 'विशेष सुरक्षा' सम्भव है। दवाईयों और शल्य-चिकित्सा में इस्तेमाल होने वाले उपकरण के पेटेंट के दुश्प्रभाव सारे विश्व ने देखा है। चिकित्सा के क्षेत्र में पेटेंट धारक कम्पनियां सस्ती और सामान्य दवाईयों के स्वतंत्र उत्पादन पर भी प्रतिबन्ध लगा रही हैं। इस प्रकार मुक्त व्यापार के बजाए एकाधिपत्य को बढ़ावा दिया जा रहा है। नतीजा हम सबके सामने है — विकासशील देशों में दवाईयां और चिकित्सा गरीबों की पहुंच से दूर होती जा रही है।

WTO के प्रमुख देशों में 3-4 देश ऐसे भी हैं जो विकासशील हैं, पर वे ज्यादा मुखर नहीं हैं। ये देश आर्थिक रूप से अमेरिका और यूरोपीय संघ के ऊपर आश्रित हैं। इसलिए उनकी हां में हां मिलाना इनकी मजबूरी है। अकसर यह होता है कि गरीब देशों की मांग पर ध्यान दिये बिना, अमीर देश मिलजुल कर नियम बना लेते हैं। अगर कोई गरीब देश विरोध करता है या अमीर देशों के नियमों को नहीं मानता है, तो कठिन आर्थिक प्रतिबन्धों की धमकी देकर उसे चुप करा दिया जाता है। इस प्रकार WTO के समझौता वार्ताओं में विकासशील देशों की नीति निर्धारण से जुड़ी संप्रभुता का जरा भी सम्मान नहीं किया जाता है। शुरुआत से ही WTO में ऐसे नियम बने हैं जिससे राष्ट्रीय संप्रभुता को हमेशा नजरअंदाज किया गया है। कई बार इन नियमों के वजह से पर्यावरण सुरक्षा, जन-स्वास्थ्य, मजदूर अधिकारों से जुड़े राष्ट्रीय कानूनों को बदलना या रद्द करना पड़ा है। WTO के नियमों का इस्तेमाल करके कोई भी कम्पनी अगर चाहे तो अपनी सरकार की मदद से किसी भी देश के ऊपर मुकदमा चला सकती है। उसे सिर्फ यह कहना होगा कि उसके व्यापार के लिए बाधा उत्पन्न हो रही है। इस प्रकार WTO विश्व भर में एकमात्र ऐसी संस्था है जो सरकारों के कानून को भी उलट सकती है।

कृषि समझौता (Agreement on Agriculture)

कृषि समझौता, व्यापार इतिहास के सबसे जटिल समझौतों में से एक है। कृषि समझौते के जरिए कृषि उत्पादों के उदारीकरण को नियमित और नियंत्रित किया जाता है। कृषि आजीविका का मुख्य साधन है, इसलिए कृषि उदारीकरण से विश्व की आबादी का एक बड़ा हिस्सा प्रभावित होता है। विशेष रूप से विकासशील देशों में कृषि उत्पादन व्यवस्था ही यह तय करती है कि लोगों को आवश्यक भोजन मिलेगा या नहीं, और अगर मिलेगा तो कितना मिलेगा। आबादी का एक बड़ा हिस्सा अपनी आजीविका के लिए निर्वाह खेती के साथ-साथ नकद फसलों के खेती पर भी आश्रित है। खाद्य आयात करने वाले देश जिनमें से ज्यादातर संसाधनहीन और निम्न आय वाले देश हैं, विश्व खाद्य कीमतों में उतार-चढ़ाव के प्रति काफी सन्वेदनशील हैं। ये देश विभिन्न कारणों से उत्तर के देशों से आयातित उत्पादों के साथ प्रतिस्पर्धा कर पाने में सक्षम नहीं हैं।

दिसम्बर 1994 तक 'कृषि' गैट की परिधि से बाहर था। अन्य शब्दों में, कृषि को उस वक्त व्यापार की वस्तु के रूप में नहीं देखा जा रहा था। सबसे पहले, मार्केश वार्ता के दौरान WTO के "फाइनेल एक्ट" दस्तावेज में कृषि से जुड़े मुद्दों को शामिल किया गया। उरुग्वे वार्ता में इसे और विस्तृत रूप दिया गया। यह अमेरिका और यूरोपीय संघ द्वारा विकासशील देशों के बाजार पर कब्जा करने की एक चाल थी। यह जानकर आश्चर्य होगा कि कृषि समझौते के मूल प्रारूप³⁰ को 'कारगिल कॉर्पोरेशन' (विश्व में सबसे ज्यादा अनाज निर्यात करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनी) के पूर्व कार्यकारी डैन एम्सट्रोज़ ने तैयार किया। डैन एम्सट्रोज़, गैट में अमेरिका के राजदूत भी थे और उरुग्वे दौर (1987-89)³¹ की वार्ता में मुख्य वार्ताकार भी।

दिसम्बर 1993 में 'ब्लेयर हाउस सहमति' के रूप में कृषि समझौते को अंतिम रूप दिया गया। इसे अमेरिका और यूरोपीय संघ ने मिलकर ब्लेयर हाउस, वाशिंगटन में तैयार किया।³² इन दो महाशक्तियों को यह अहसास हो गया था कि निर्यात बाजार में एक दूसरे को हराने के लिए जिस प्रकार से वे कृषि में भारी सब्सिडी दे रहे हैं, उससे दोनों की हार है। एक समय था जब यूरोपीय संघ के बजट का 80 प्रतिशत केवल कृषि क्षेत्र में जा रहा था। इसलिए इन्होंने यह सोचा कि धीरे-धीरे गैट में कृषि को भी शामिल किया जाए जिससे मूल्य समर्थन में कटौती की जा सके और इस प्रकार कृषि के लिए भी एक वैश्विक ढांचा बनाया जाए। परन्तु अन्य देश, विशेष रूप से दक्षिण के छोटे देश, इस समझौते को एकतरफा मान रहे थे। परन्तु इनके ऊपर इतना दबाव था कि इसे स्वीकार करने के अलावा इनके पास और कोई रास्ता नहीं था। विकासशील देशों ने इस शर्त पर इसे स्वीकार किया कि उन्हें विकसित देशों में अपने कृषि उत्पादों को बेचने के उचित अवसर दिये जायेंगे। सिर्फ उन किसानों ने इस कृषि समझौते का स्वागत किया जिन्हें ज्यादा व्यापार, बाजार में पहुंच और अधिक कीमतों से फायदा होने वाला था। पर हकीकत में किसानों के लिए उचित मूल्य मिलना और ज्यादा मुश्किल हो गया। इस समझौते से WTO के सिर्फ अमीर सदस्य देशों को ही फायदा हुआ, जिन्हें अपने कृषि उत्पादों और प्रसंस्कृत माल (processed goods) बेचने के लिए विकासशील देशों का बाजार

³⁰ <http://www.lobbywatch.org/archieve2.asp?arcid=1005>

³¹ <http://www.usda.gov/wps/portal/usda/usdahome?contentid=2003/04/0131.html>

³² <http://www.fao.org/docrep/004/w7841e/w7841e04.htm>

मिल गया। दूसरी तरफ गरीब विकासशील देशों को ऊट-पटांग शर्तों का सामना करना पड़ा, जिससे उनके उत्पादन खर्च बढ़ गए और प्रमुख उत्पादों के निर्यात के दाम गिर गए।

कृषि समझौते का मुख्य उद्देश्य व्यापार अवरोधों को दूर करना और कृषि को उचित अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की ओर बढ़ाना है। कृषि में तीन मुख्य अवरोधक हैं— (क) बाजार में पहुंच पर प्रतिबन्ध (प्रशुल्क और गैर-प्रशुल्क उपाय), (ख) घरेलू समर्थन (सब्सिडी); और (ग) निर्यात प्रतिस्पर्धा (जिसमें निर्यात सब्सिडी और निर्यात सम्बन्धित उपाय शामिल हैं)। इन सभी व्यापार अवरोधों को एक तय समय-सीमा के अन्दर धीरे-धीरे चरणबद्ध तरीकों से कम करना ही कृषि समझौते का लक्ष्य है।

‘बाजार में पहुंच’ (Market Access)

‘बाजार में पहुंच’ का पता इस बात से लगता है कि कोई देश किस हद तक अपने बाजार में आयातित विदेशी उत्पादों को आने की अनुमति देता है। ‘बाजार में पहुंच’ को सीमित रख कर घरेलू उत्पादकों को अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा से ‘सुरक्षित’ रखा जाता है। इसे करने के दो तरीके हैं – (क) प्रशुल्क (आयात कर); और (ख) गैर-प्रशुल्क, अवरोधों को लगा कर। कृषि उत्पादों के आयात को नियमित करने के लिए, आम तौर पर इन दोनों तरीकों (प्रशुल्क और गैर-प्रशुल्क) का इस्तेमाल किया जाता है। इन्हीं संरक्षणवादी तरीकों को हटाने या नियमित करने के लिए ‘बाजार में पहुंच’ के प्रावधानों का इस्तेमाल किया जाता है। पर यहां ज्ञात रहे कि ‘प्रशुल्क’ केवल व्यापार के अवरोधक ही नहीं हैं बल्कि इनसे सरकार को राजस्व भी प्राप्त होता है। विकासशील देशों के लिए तो ये राजस्व का प्रमुख स्रोत है।

व्यापार के ‘गैर-प्रशुल्क’ अवरोधों में कोटा, मात्रात्मक प्रतिबन्ध, अस्थिर लेवी (variable levy), न्यूनतम आयात मूल्य, विवेकाधीन लाइसेंस व्यवस्था (discretionary licensing), राज्य के व्यापार के तरीके (state trading measures), स्वैच्छिक संयम समझौते (voluntary restraint agreement) इत्यादि शामिल हैं। ये अवरोध ‘मुक्त और उचित व्यापार’ (Free and fair trade) में बाधा पहुंचाते हैं। कृषि समझौते के तहत इन सभी गैर-प्रशुल्क अवरोधों (Non Tariff Barriers) को या तो रद्द कर दिया जाता है या फिर उन्हें भी ‘प्रशुल्क’ (Tariff) में बदल दिया जाता है। इस प्रक्रिया को गैर-प्रशुल्क अवरोधों का ‘प्रशुल्कीकरण’ (Tariffication) कहा जाता है। इन प्रशुल्कों को तय करने के लिए मूल संदर्भ अवधि (base reference period) के रूप में वर्ष 1986-88 को लिया गया है। वर्ष 1986-88 के समय के अवरोधों के अनुसार ही प्रशुल्कों को निर्धारित किया जाता है। अगर एक बार इन गैर-प्रशुल्क अवरोधों को रद्द कर दिया जाए तो उन्हें पुनः शुरू नहीं किया जा सकता। कृषि समझौते के अनुसार इन्हें प्रशुल्कों में बदलने का प्रावधान ‘बाध्यकारी’ है।

‘बाजार में पहुंच’ के तहत निम्नलिखित प्रतिबद्धताएं शामिल हैं :

- विकसित और विकासशील देशों को अपने सभी गैर-प्रशुल्क अवरोधों को सरल प्रशुल्कों में बदलना होगा (प्रशुल्कीकरण);
- सभी प्रशुल्क बाध्यकारी और स्थायी होंगे। इन्हें एक निश्चित सीमा से ज्यादा नहीं बढ़ाया जा सकता। उदाहरण के रूप में भारत अपने प्राथमिक कृषि उत्पादों (जैसे अनाज) पर 100 प्रतिशत, प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ (processed foods) पर 150 प्रतिशत और खाद्य तेल पर 300 प्रतिशत प्रशुल्क के लिए बाध्य है;

- कृषि समझौते के अनुसार, प्रशुल्कों में कटौती केवल बाध्यकारी दरों (Bound Tariff) में ही सम्भव है, प्रयुक्त दर (applied rate) में नहीं;
- विकसित देशों को अपने आयात प्रशुल्कों को 6 साल की अवधि में समान रूप से 36 प्रतिशत तक कम करना होगा – जिसमें किसी भी एक उत्पाद या प्रशुल्क-क्रम (Tariff line) को कम से कम 15 प्रतिशत घटाना होगा³³
- विकासशील देशों को अपने आयात प्रशुल्कों को 10 साल की अवधि में समान रूप से 24 प्रतिशत तक कम करना होगा—जिसमें किसी भी एक उत्पाद या प्रशुल्क-क्रम को कम से कम 10 प्रतिशत घटाना होगा;
- कम विकसित देशों को अपने प्रशुल्क दरों को कम करने के लिए आमतौर पर किसी प्रतिबद्धता की जरूरत नहीं है, पर उन्हें भी अपने प्रशुल्क-क्रम को स्थिर रखना होगा।

प्रशुल्क कटौती के लिए 1986–88 को संदर्भ वर्ष माना गया है, जिसके आधार पर आज के प्रशुल्क निर्धारित किए जाते हैं। वर्ष 1986–88 को संदर्भ वर्ष (Benchmark Year) लेने के पीछे की वजह विकसित देश थे। इसी समय उरुग्वे दौर की शुरुआत हुई थी। सभी विकसित देशों को कृषि समझौते में जोड़-तोड़ की सम्भावनाएं दिखने लगी थीं। उन्होंने आने वाली समझौता वार्ताओं में अपनी स्थिति बेहतर बनाने के लिए तुरन्त अपने प्रशुल्कों को बढ़ा दिया था ताकि अगर बाद में कम करने की नौबत आये तो कोई दिक्कत न हो। इस तरह अगर देखा जाए तो इन विकसित देशों के लिए प्रशुल्कों में 36 प्रतिशत की कटौती कोई बड़ी बात नहीं है क्योंकि इनके दर पहले से ही बढ़े हुए थे।

कृषि समझौता हर तरह के गैर-प्रशुल्क आयात प्रतिबन्धों को मना नहीं करता। सरकारों के पास अभी भी कुछ उपाय मौजूद हो सकते हैं, बशर्ते वे WTO समझौतों के अनुरूप हों। इन उपायों में प्रमुख हैं :

- भुगतान संतुलन समस्या (balance of payment problem) को कम करने के लिए आयात प्रतिबन्ध (गैट के अनुच्छेद XII और XVIII)
- सामान्य सुरक्षण (general safeguards) (गैट के अनुच्छेद XIX और सुरक्षण समझौता –Safeguard Agreement)
- सामान्य अपवाद (general exceptions) (गैट के अनुच्छेद XX, जो सार्वजनिक नैतिकता, संसाधनों के संरक्षण, और मनुष्य, पशु और वनस्पति और स्वास्थ्य के सुरक्षण जैसे मुद्दों की बात करता है)
- स्वास्थ्य सम्बन्धी और पादप स्वच्छता (sanitary and phytosanitary) उपाय जो खाद्य सुरक्षा और पशु व वनस्पति स्वास्थ्य की बात करता है)
- व्यापार के तकनीकी अवरोध (technical barriers to trade) जैसे उत्पाद मानक, तकनीकी नियम और लेबलिंग इत्यादि

³³ “प्रशुल्क-क्रम/श्रेणी” वे उत्पाद हैं जिन्हें आयात प्रशुल्क के निर्धारण के लिए काफी विस्तृत रूप से परिभाषित किया जाता है। इन उत्पादों को उप-विभाजित भी किया जा सकता है। उत्पादों के कोड में मौजूद अंकों की संख्या से विभाजन की स्थिति का पता लगाया जा सकता है।

- सामान्य WTO प्रावधानों में शामिल अन्य उपाय जो विशिष्ट रूप कृषि के लिए न हो

न्यूनतम उपयोग के अवसर : (Minimum Access Opportunities) : सदस्य देशों द्वारा घरेलू खपत के अनुसार कृषि उत्पादों के आयात का न्यूनतम स्तर निर्धारित करना 'बाजार में पहुंच' प्रतिबद्धता का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। गैर-प्रशुल्क अवरोधों के प्रशुल्कीकरण से उच्च प्रशुल्क बाध्यता की स्थिति पैदा हो सकती है। उदाहरण के रूप में जापान में चावल के आयात प्रशुल्क की दर 800 प्रतिशत तक पहुंच गई थी। इससे निपटने के लिए इस प्रावधान को शामिल किया गया है। कृषि समझौते में 'बाजार में पहुंच' को बेहतर बनाने के लिए कई उपाय दिए गए हैं। अगर देशों को 'विशेष व्यवहार अनुच्छेद' (special treatment clause) का फायदा उठाना है तो प्राथमिक उत्पादों के आयात के लिए 'न्यूनतम उपयोग के अवसर' बनाने होंगे। इस अनुच्छेद के अनुसार अगर प्राथमिक कृषि उत्पादों का आयात घरेलू खपत के 3 प्रतिशत से कम है तो 'प्रशुल्क कोटा' (tariff rate quota) के जरिए कम दर पर 'न्यूनतम उपयोग के अवसर' का प्रावधान रखना होगा। उदाहरण के लिए वर्ष 1995 में प्राथमिक उत्पादों का आयात वर्ष 1996–98 (मूल वर्ष) की औसत वार्षिक खपत से तीन प्रतिशत से कम नहीं होना चाहिए। विकसित देशों के लिए वर्ष 2000 के अन्त तक इस कोटा को बढ़ाकर 5 प्रतिशत कर दिया गया और विकासशील देशों को इसे बढ़ाने के लिए वर्ष 2004 तक का समय दिया गया। इस प्रावधान के अनुसार देशों को अपने प्राथमिक उत्पादों का न्यूनतम आयात करना ही होगा, चाहे उन्हें जरूरत हो या न हो। इस तरह से यह प्रावधान 'मुक्त' व्यापार के सिद्धांत पर खरा नहीं उतरता। ऐसे समय में जब देश अपने घरेलू बाजार को बचाने में लगे हुए हैं, यह प्रावधान कृषि उत्पादों के न्यूनतम आयात को जबरदस्ती थोप देता है। न्यूनतम उपयोग प्रतिबद्धता से निकले 'प्रशुल्क कोटा' का निर्धारण 'सबसे पसंदीदा राष्ट्र व्यवहार' (Most Favoured Nation Treatment) के सिद्धांत के अनुरूप होना चाहिए अर्थात् यह प्रावधान सभी देशों के लिए बराबरी से उपलब्ध होना चाहिए। मई 2015 में WTO के 37 सदस्यों³⁴ (यहां यूरोपीय संघ और उसके 28 सदस्य राज्यों को एक ही गिना गया है) ने प्रशुल्क कोटा को अपनी अनुसूची में शामिल कर दिया। WTO के सदस्यों के बीच विशिष्ट उत्पादों के ऊपर एक हजार से भी ज्यादा प्रशुल्क कोटा है। ये सभी प्रशुल्क कोटा बाध्यकारी होते हैं।

विशेष सुरक्षण (Special Safeguard) : घरेलू बाजार को आयात से सुरक्षित रखने के लिए, जिन उत्पादों का प्रशुल्कीकरण किया जाता है, उनके ऊपर 'विशेष सुरक्षण' उपाय भी लगाये जा सकते हैं। इस प्रावधान के अनुसार देश अस्थायी रूप से आयात के ऊपर अतिरिक्त शुल्क लगा सकते हैं, जो मौजूदा सामान्य सीमा शुल्क के एक-तिहाई से ज्यादा न हो। आयात में बाढ़या प्रभावित उत्पाद की कीमत में अचानक गिरावट की स्थिति में इसका इस्तेमाल किया जा सकता है। दो तरह की स्थितियों में 'विशेष सुरक्षण' के उपाय लगाए जा सकते हैं – (क) जब आयात की मात्रा एक निर्धारित सीमा को पार कर जाए, या (ख) जब आयात की कीमतें पहले से निर्धारित एक सीमा से ज्यादा नीचे गिर जाए। एक बार में इन दोनों में से केवल एक ही लागू किया जा सकता है। 'कीमत ट्रिगर' (Price Trigger) वर्ष 1986–88 की संदर्भ अवधि में किसी उत्पाद के आयात का औसत मूल्य सूचित करता है। अगर वर्तमान समय में आयात की कीमत इस संदर्भ अवधि में आयात के औसत मूल्य से कम हो जाए, तो सदस्य देश 'विशेष सुरक्षण' का इस्तेमाल कर सकते हैं। कृषि समझौते के

³⁴ https://www.wto.org/english/res_e/booksp_e/agric_agreement_series_2.pdf

अनुसार सदस्य देशों को इस कीमत को सार्वजनिक करना होता है। दूसरी तरफ, 'मात्रा ट्रिगर' (Quantity Trigger) दो घटकों को जोड़कर बना है—(i) घरेलू खपत में बदलाव; और (ii) आयात मात्रा में कुल वृद्धि। इस प्रकार से लगे अतिरिक्त प्रशुल्क वर्ष के अंत तक ही लागू रहते हैं। कृषि के 'विशेष सुरक्षण' के प्रावधान और 'सुरक्षण समझौते' (Safeguards Agreement) के सामान्य सुरक्षण के उपाय, एक दूसरे से भिन्न हैं। इन दोनों में प्रमुख अंतर यह है कि 'सुरक्षण समझौते' के तहत सुरक्षण के उपाय तभी लागू होते हैं, जब आयात से कोई गम्भीर 'क्षति' या उसकी सम्भावना हो; जबकि कृषि के तहत 'विशेष सुरक्षण' के उपाय घरेलू उत्पादन के ऊपर बिना किसी प्रतिकूल प्रभाव के भी लगाये जा सकते हैं।

'विशेष सुरक्षण' के उपाय सिर्फ 38 विकसित और विकासशील सदस्यों के लिए उपलब्ध हैं, जिन्होंने 'प्रशुल्कीकरण' किया है। इन सदस्य देशों में एक भी कम विकसित देश (LDCs) नहीं है। उप-सहारा अफ्रीका देशों में से सिर्फ उन देशों के लिए 'विशेष सुरक्षण' के उपाय उपलब्ध हैं जो देश दक्षिण अफ्रीका के साथ सीमा संघ (custom union) में शामिल हैं—जैसे दक्षिण अफ्रीका, नामिबिया, स्टिज़रलैण्ड, और बोट्सवाना। 'विशेष सुरक्षण' के उपाय एक के बाद एक क्रमानुसार निर्धारित होते हैं। कुछ प्रमुख विकसित देशों के पास बड़ी मात्रा में उत्पाद-क्रम हैं जो इसका फायदा उठा रहे हैं, जैसे यूरोपीय संघ के 539 उत्पाद (उनके कुल कृषि क्रम का 23.9 प्रतिशत), नार्वे 581 उत्पाद, स्टिज़रलैण्ड-लिचेंस्टन 961 उत्पाद।³⁵ इसके के अनुपात में बहुत कम विकासशील देशों ने 'विशेष सुरक्षण' प्रावधान का सहारा लिया है।

विशेष व्यवहार अनुच्छेद (Special Treatment Clause) : 'विशेष व्यवहार' WTO के उन सदस्यों के ऊपर लागू होता है जो अपने कुछ उत्पादों का प्रशुल्कीकरण नहीं करना चाहते हैं। सुरक्षण अनुच्छेद की ही तरह, 'विशेष व्यवहार' अनुच्छेद भी प्रशुल्कीकरण से पूरी छूट नहीं देता, बल्कि उसे कुछ समय के लिए स्थगित कर देता है, जिससे प्रमुख खाद्यों को कुछ समय के लिए सुरक्षित रखा जा सके। विकसित देशों के लिए इसे क्रियावयन अवधि के अन्त तक, अर्थात् वर्ष 2000 तक स्थगित किया जा सकता था। विकासशील देशों के लिए 10वें वर्ष तक या वर्ष 2004 तक इसे स्थगित कर सकते थे। इस विकल्प को कुछ ही सदस्यों द्वारा अपनाया गया है और वह भी सिर्फ एक-दो उत्पादों पर ही। जापान, फिलिपीन्स और दक्षिण कोरिया ने चावल के ऊपर; और इज़राइल ने भेड़ के मांस और कुछ दुग्ध उत्पादों के ऊपर। चीनी-ताईपी, जो वर्ष 2001 में WTO का सदस्य बना, को भी चावल के लिए 'विशेष व्यवहार' की अनुमति प्राप्त है।

इन देशों को धीरे-धीरे इन उत्पादों का आयात कोटा बढ़ाते रहना होगा। उदाहरण के रूप में दक्षिण कोरिया ने चावल आयात के प्रशुल्कीकरण को वर्ष 2014 तक रोक रखा था। इसके लिए दक्षिण कोरिया को आयात कोटा के रूप में चावल के बाजार को खोलना पड़ा। 'बाजार में न्यूनतम पहुंच' (Minimum Market Access) के रूप में वर्ष 1995 में यह कोटा 51,307 टन था। इस कोटा को धीरे-धीरे बढ़ाना था और वर्ष 2004 तक यह बढ़कर 205,228 टन हो गया, जो दक्षिण कोरिया की वार्षिक खपत का 4 प्रतिशत था। अप्रैल 2004 में, दक्षिण कोरिया के चावल आयात की 'विशेष व्यवहार' की अवधि को बढ़ाकर 2014 कर दिया गया। पर इसके बदले यह शर्त रखी गई कि आयात कोटा मौजूदा 4.4 प्रतिशत से बढ़ाकर चावल खपत का 7.96 प्रतिशत कर दिया जाएगा। इस तरह दक्षिण कोरिया का 2014 में चावल आयात की मात्रा बढ़कर 408,700 टन हो गई।

³⁵ http://www.southcentre.int/wp-content/uploads/2015/12/AN_MC10_2_Special-Safeguard-in-Agriculture.pdf

मई 2015 तक 5 में से 4 देशों ने इन प्रतिबन्धों को हटा दिया था। अब इन्हें सिर्फ प्रशुल्कों तक ही सीमित रखा गया है। जापान, चीनी-ताईपी, इज़राइल और कोरिया ने इन प्रतिबन्धों को प्रशुल्क (प्रशुल्कीकरण) में बदल दिया है। ये देश अब अपने उत्पादों पर साधारण सीमा प्रशुल्क लगा रहे हैं। फिलिपीन्स को चावल के साधारण सीमा प्रशुल्क में परिवर्तन करने के लिए जून 2017 तक का समय दिया गया है।

दोहा दौर के बाद बाजार में पहुंच (Market Access post Doha Round)

कृषि समझौते के तहत 'बाजार में पहुंच' के प्रावधानों से विकसित देशों के अत्यधिक संरक्षित बाजारों का ज्यादा उदारीकरण नहीं हुआ है। ये देश आयात के ऊपर गैर-प्रशुल्क प्रतिबन्धों द्वारा व्यापार को विकृत करते आए हैं। अपने फायदे के लिए इन देशों ने कभी 'विशेष सुरक्षण' के नाम पर या कभी अन्य तरीकों से, जैसे किसी उत्पाद को 'संवेदनशील उत्पाद' कह कर या अपने मतलब के उत्पादों के ऊपर 'प्रशुल्क शिखर' (Tariff Peak), 'प्रशुल्क वृद्धि' (Tariff Escalation), 'प्रशुल्क सरलीकरण' (Tariff Simplification), इत्यादि लगाकर व्यापार के शर्तों को तोड़ते-मरोड़ते आए हैं। इन देशों ने व्यापार को विकृत करने के लिए इन 'भेदे' प्रशुल्कीकरण के तरीकों को अपनाया है।

जुलाई 2004 की समझौता वार्ता में 'कृषि में तौर तरीकों के स्थापना के लिए ढांचा' (Framework for Establishing Modalities in Agriculture) तैयार किया गया। इसे 'जुलाई पैकेज' के नाम से भी जाना जाता है। इसमें 'संवेदनशील उत्पाद' (Sensitive Product), 'विशेष उत्पाद' (Special Product), और 'विशेष सुरक्षण उपाय' (Special Safeguard Mechanism) जैसे प्रावधान शामिल हैं। इस समझौते ने वैश्विक कृषि व्यापार के भविष्य में होने वाले सुधारों की बुनियाद रखी। इस समझौता वार्ता की शुरुआत 2001 में चौथी WTO मंत्रिस्तरीय बैठक के दौरान दोहा में हुई, जहां विकसित देशों ने इसे 'विकास दौर' (Development Round) के रूप में पेश करने के लिए दबाव डाला। इसलिए इस वार्ता को 'दोहा विकास दौर' (Doha Development Round) के नाम से भी जाना जाता है। इस दौर का मुख्य उद्देश्य बहुपक्षीय मुद्दों में नए मुद्दों को जोड़ना था, जैसे प्रतिस्पर्धा नीति (Competition Policy), निवेश (Investment), सरकारी खरीद (Public Procurement) में पारदर्शिता और व्यापार सुगमता (Trade Facilitation) इत्यादि। इन्हें तथाकथित 'सिंगापुर मुद्दे' भी कहा जाता है क्योंकि इन्हें पहली बार 1996 में सिंगापुर में हुए WTO की मंत्रिस्तरीय बैठक में उठाया गया था। परन्तु 'सिंगापुर मुद्दों' के रूप में विकसित देशों की यह चाल 1996 में पूरी तरह से नाकामयाब रही थी क्योंकि कृषि में विकासशील देशों के कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों पर कोई ठोस सहमति नहीं बन पाई थी। विकासशील देशों की यह मांग थी कि विकसित देश अपनी घरेलू सब्सिडी को कम करें, विकासशील देशों के लिए बाजार की पहुंच को बढ़ाया जाए, कृषि उत्पादों के लिए निर्यात सब्सिडी को नियंत्रित या खत्म किया जाए, और सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण कपास का मुद्दा था जिसे 'कपास-4' देशों ने उठाया था। कपास-4 या सी-4 समूह में वे 4 पश्चिमी अफ्रीकी देश हैं जिन्हें विकसित देशों की अत्यधिक सब्सिडी से काफी नुकसान हो रहा है। कपास के मुद्दों के कारण ही कैनकुन (मैक्सिको) में आयोजित 2003 में 5वीं मंत्रिस्तरीय बैठक विफल रही थी। कैनकुन की बैठक विफल होने का परिणाम यह हुआ कि मंत्रिस्तरीय बैठकों में 'सिंगापुर मुद्दों' पर कोई भी फैसला नहीं लिया जा सका। अंततः उन्हें WTO के एजेन्डा से पूरी तरह से बाहर निकालना पड़ा।

सन्वेदनशील उत्पाद (Sensitive Product) : विकसित और विकासशील देशों के पास यह अधिकार है कि वे अपने कुछ उत्पाद-क्रमों को 'सन्वेदनशील उत्पाद' के रूप में घोषित कर उनके प्रशुल्क में कटौती को रोक सकते हैं। इनकी संख्या देश की उत्पाद-क्रम के अनुपात में तय होती है। विकसित देशों के लिए यह 4 प्रतिशत है और विकासशील देशों के लिए, 5.33 प्रतिशत। पर प्रशुल्क में कटौती को रोकने के लिए उनका कोटा बढ़ाना होगा। इसका मतलब यह है कि सन्वेदनशील उत्पादों को अपेक्षाकृत कम प्रशुल्क कटौती पर उपलब्ध कराया जा सकता है, पर तभी जब 'बाजार में पहुंच' सुनिश्चित करने के लिए इनका कोटा बढ़ाया जाए।

प्रशुल्क शिखर (Tariff Peak) : दोहा वार्ता के दौरान विकासशील देशों ने यह मुद्दा उठाया था कि उनके मतलब के उत्पादों के ऊपर विकसित देशों ने अत्यधिक प्रशुल्क लगा रखा है। वर्ष 1995 में OECD (Organisation for Economic Development Co-operation) देशों का औसत प्रशुल्क – गेहूं में 214 प्रतिशत, जौ में 197 प्रतिशत, और मक्का में 154 प्रतिशत था। उरुग्वे दौर के बाद के प्रशुल्क वातावरण और विकासशील देशों से हो रहे निर्यात के ऊपर वर्ष 1997 में UNCTAD (United Nation Conference on Trade and Development) और WTO द्वारा संयुक्त रूप से एक अध्ययन किया गया। इस अध्ययन के अनुसार 'कुआड' देश (अर्थात् अमेरिका, यूरोपीय संघ के देश, जापान और कनाडा की चौकड़ी) अपनी प्रशुल्क दरों में बहुत ज्यादा अन्तर और उतार-चढ़ाव बनाए रखते हैं। प्रशुल्क में इन शिखरों की मदद से विकासशील देशों से हो रहे निर्यात को रोक दिया जाता है। इस प्रकार के प्रशुल्क शिखर का उदाहरण हमें वस्त्र, कपड़ा, मत्स्य उत्पाद में मिलते हैं। उदाहरण के रूप में अमेरिका, यूरोपीय संघ, जापान और कनाडा विभिन्न खाद्य उत्पादों (जैसे अनाज, चीनी, दुग्ध उत्पाद, मांस, फल, सब्जियां और मछली इत्यादि) के ऊपर 350 से 900 प्रतिशत प्रशुल्क शिखर बनाए रखते हैं। यह अभी भी विकासशील देशों के लिए गम्भीर चिंता का विषय है।

प्रशुल्क वृद्धि (Tariff Escalation) : 'प्रशुल्क वृद्धि' (अर्थात् प्रसंस्करण के प्रत्येक चरण के साथ प्रशुल्क में वृद्धि) द्वारा विकासशील देशों से निर्यात किए गए प्रसंस्कृत उत्पादों को विकसित देशों में आने से रोका जाता है। विकसित देश अर्द्ध-प्रसंस्कृत या तैयार उत्पाद की तुलना में, कच्चे माल के ऊपर कम आयात प्रशुल्क लगाते हैं। इस तरह कच्चे माल के लिए तो वैश्विक बाजार को खुला रखा गया है पर विकासशील देशों के प्रसंस्कृत, उन्नत और महंगे उत्पादों को 'प्रशुल्क वृद्धि' की मदद से प्रतिस्पर्धा से बाहर रखा जाता है। यह विकासशील देशों को ऐसी स्थिति में डाल देता है जहां वे हमेशा सस्ते और कच्चे माल के निर्यातक बन कर रह जाते हैं। उनके प्रसंस्कृत या तैयार उत्पादों को विश्व बाजार में प्रवेश से वर्जित कर दिया जाता है। यह एक प्रमुख कारण है जिसकी वजह से विकासशील देशों के उत्पादों का विविधीकरण और प्रसंस्कृरण सीमित रह जाता है। उदाहरण के रूप में उत्तर अमेरिकी देशों में पशु और पशु-उत्पादों, सब्जियों और सर्जियों-उत्पादों, चीनी और स्वीट्‌नर और तम्बाकू उत्पादों के ऊपर 'प्रशुल्क वृद्धि' को देखा जा सकता है। जिन उत्पाद-क्रमों के ऊपर प्रशुल्क वृद्धि का सबसे ज्यादा असर पड़ा है, उनमें प्रमुख हैं – मांस और मांस उत्पाद व अनाज व अनाज-उत्पाद। 'प्रशुल्क वृद्धि' सन्वेदनशील उत्पादों के ऊपर लागू नहीं होता है।

प्रशुल्क सरलीकरण (Tariff Simplification) : यह एक और संरक्षण उपाय है जिसका इस्तेमाल विकसित देश अपने बाजार को विकासशील देशों के आयात से बचाने के लिए करते हैं। कुछ विकसित देश

जैसे यूरोपीय संघ, नार्वे, स्विट्जरलैण्ड और कनाडा अपने कृषि आयात के ऊपर ढेर सारे 'नॉन-एड-वेलोरेम' (non-ad valorem) यानी 'गैर-यथा मूल्य' प्रशुल्क लगा देते हैं। इससे विकासशील देशों के आयात रोकने के लिए एक और अतिरिक्त गैर-पारदर्शी सुरक्षा उपाय मिल जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कृषि समझौते का केन्द्र सिर्फ गरीब देशों के बाजार उदारीकरण को आगे बढ़ाने के लिए है। अमीर देश अभी भी 'प्रशुल्क शिखर' और अन्य व्यापार अवरोधों के जरिए फायदा उठा रहे हैं। इन प्रावधानों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनों पक्षों के लिए एक बराबर नहीं है। यह WTO के सिद्धांतों की अवहेलना है और व्यापार उदारीकरण प्रतिबद्धताओं को अर्थहीन बना देता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि विकसित देश लगातार दोहा वार्ता में विकासशील देशों के 'विशेष और विभिन्न व्यवहार' का विरोध कर रहे हैं।

विशेष एवं विभिन्न व्यवहार (Special and Differential Treatment) : दोहा विकास दौर को विकासशील देशों के लिए विशेष प्रवाधान सुनिश्चित करना था। अतः 'विशेष एवं विभिन्न व्यवहार' का प्रावधान तैयार किया गया। विकसित देश लगातार इन प्रावधानों का विरोध करते रहे। विकासशील और कम विकसित देशों को इसे हासिल करने के लिए काफी लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ी रही है। कम पूंजी, प्रतिस्पर्धात्मकता में कमी, और तकनीकी अभाव के कारण ये विकसित देशों की बराबरी नहीं कर पा रहे थे। इन देशों ने हमेशा इस बात पर जोर डाला कि खाद्य और आजीविका सुरक्षा और ग्रामीण विकास के लिए ऐसे प्रावधानों की मूलभूत आवश्यकता है। जी-33 समूह (जिसमें 40 से ज्यादा विकासशील देश शामिल हैं) ने यह तय कर लिया था कि जब तक खाद्य सुरक्षा, कृषि आजीविका और ग्रामीण विकास के लिए विशेष उत्पाद (Special Product) और विशेष सुरक्षण उपाय (Special Safeguard Mechanism) सुनिश्चित नहीं होता तब तक वह किसी भी समझौते पर आगे नहीं बढ़ेंगे। परन्तु अमेरिका और कैर्नस (Cairns) समूह जैसे विकसित देशों ने इसे नकारते हुए कहा कि खाद्य सुरक्षा के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है कि आयात के जरिये खाद्य की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए। दरअसल, विकसित देश इसलिए विरोध कर रहे थे क्योंकि इन प्रावधानों के कारण गरीब और विकासशील देशों के बाजार में इनका सामान असानी से नहीं पहुंच पा रहा था। परन्तु इन तमाम विरोधों के बावजूद विकासशील देश 2004 में इन प्रावधानों को 'विशेष और विभिन्न व्यवहार' के मौलिक घटक के रूप में शामिल करवा पाने में कामयाब रहे।

विशेष उत्पाद (Special Product) : 'विशेष उत्पाद' विकासशील देशों के कृषि समुदायों के खाद्य सुरक्षा, आजीविका सुरक्षा और ग्रामीण विकास के नजरिए से काफी महत्वपूर्ण हैं। इससे विकासशील देशों को प्रशुल्क कटौती में छूट मिल जाती है। ज्ञात रहे 'विशेष उत्पादों' का नामांकन 'संवेदनशील उत्पादों' के नामांकन से भिन्न होता है। 'विशेष उत्पादों' का नामांकन खाद्य और आजीविका सुरक्षा और ग्रामीण विकास से जुड़े 12 मानदण्डों के आधार पर होता है, जैसे- प्रमुख भोजन, ज्यादा घरेलू खपत, उत्पादन, रोजगार, आय, व्यय, इत्यादि। उन उत्पादों को भी नामांकित किया जा सकता है जिन्हें किसी सदस्य ने घरेलू समर्थन के लिए घोषित किया हो, और उसे 1995 से 2001 के बीच निर्यात किया हो।

हांगकांग मंत्रिस्तरीय बैठक के घोषणापत्र (दिसम्बर 2005) में यह कहा गया – "विकासशील देशों के पास यह छूट है कि वह खाद्य सुरक्षा, आजीविका सुरक्षा और ग्रामीण विकास के आधार पर उत्पादों की उपयुक्त संख्या को 'विशेष उत्पाद' के रूप में नामांकित कर सकते हैं। ये उत्पाद विशेष व्यवहार प्राप्त करने के लिए

योग्य होंगे।” उस वक्त से भारत समेत जी-20 और जी-33 समूह यह मांग कर रहे हैं कि 20 प्रतिशत कृषि प्रशुल्क क्रमों को ‘विशेष उत्पाद’ के रूप में अपने आप नामांकित कर दिया जाय। परन्तु विकसित देश और खासतौर पर अमेरिका ने इसका जोरदार विरोध करते हुए कहा कि ‘विशेष उत्पाद’ विकासशील देशों के बाजार तक इनकी पहुंच को बाधित कर देंगे। इसलिए ‘विशेष उत्पादों’ को केवल पांच प्रशुल्क क्रमों (5% of Tariff Line) के लिए ही सीमित रखा जाए। शायद यही वजह है कि 6 दिसम्बर 2008 के प्रारूप में जी-33 समूह की मांग को नजरअंदाज कर दिया गया। इस प्रारूप में दिए गए प्रस्ताव के अनुसार, 12 प्रतिशत प्रशुल्क क्रमों में औसतन 11 प्रतिशत तक की ही कटौती हो सकेगी और केवल 5 प्रतिशत प्रशुल्क क्रम ही ऐसे हो सकते हैं जिनमें ‘शून्य’ कटौती या कोई भी कटौती नहीं होगी। उदाहरण के लिए, भारत के कुल 700 कृषि प्रशुल्क क्रमों में, केवल 35 प्रशुल्क क्रमों (5 प्रतिशत) को ही ‘विशेष उत्पाद’ के रूप में नामांकित किया जा सकता है जिनमें प्रशुल्क कटौती जरूरी नहीं होगा। अर्थात्, एक राज्य से औसतन केवल एक कृषि उत्पाद को ही ‘विशेष उत्पाद’ के रूप में घोषित किया जा सकता है। दरअसल, भारत जितना बड़ा देश है और यहां के कृषि जलवायु क्षेत्रों में जितनी विविधता है, उसके अनुसार 100 ‘विशेष उत्पाद’ भी खाद्य और आजीविका को सुरक्षित रखने के लिए कम पड़ेंगे, खासतौर से छोटे और सीमान्त किसानों और खेतीहर मजदूरों के लिए। यह अलग बात है कि भारत ने अभी तक अपने ‘विशेष उत्पादों’ की सूची को सार्वजनिक नहीं किया है। हमारा यह मानना है कि भारत के ज्यादातर नामांकन दुग्ध और मुर्गी, सब्जी, फल, मसाले, अनाज, तिलहन, खाद्य तेल और कुछ प्रसंस्कृत उत्पादों जैसी उत्पाद श्रेणियों में होंगे।

आशा करते हैं कि ‘विशेष उत्पादों’ की मदद से भारत जैसे विकासशील देशों को विकसित देशों के सस्ते और सब्सिडी वाले उत्पादों से थोड़ी राहत मिलेगी। इससे व्यापार नियमों में असंतुलन को भी सुधारा जा सकेगा।

विशेष सुरक्षण उपाय (Special Safeguard Mechanism) : दोहा दौर की वार्ता के दौरान विशेष और विभिन्न व्यवहार (Special and Differential Treatment) के तहत विकासशील देशों को एक और उपाय इस्तेमाल करने का अधिकार दिया गया। वर्ष 2005 में हुई हांगकांग मंत्रिस्तरीय बैठक में कहा गया कि विकासशील देशों के पास ‘विशेष सुरक्षण उपाय’ को इस्तेमाल करने का अधिकार होगा – ‘मात्रा ट्रिगर’ और ‘कीमत ट्रिगर’ के आधार पर। यह उपाय विकासशील देशों के लिए काफी महत्वपूर्ण है इससे वे आयात ‘लहर’ और कीमतों में गिरावट से अपने गरीब किसानों को सुरक्षित रख सकेंगे।³⁶ इस उपाय के तहत आयात ‘लहर’ से घरेलू किसानों को बचाने के लिए आयात प्रशुल्क बढ़ाने की अनुमति है। मगर ‘विशेष सुरक्षण उपाय’ को लगाने से पहले यह अनिवार्य है कि आयात की मात्रा और कीमत में गिरावट एक निश्चित सीमा को पार करें – जिसे ‘मात्रा ट्रिगर’ और ‘कीमत ट्रिगर’ कहते हैं। ‘मात्रा ट्रिगर’ (quantity trigger) वह सीमा है जिसे पार करने के बाद अस्थायी रूप से सीमा शुल्क के ऊपर ‘सुरक्षण शुल्क’ (safeguard duty) लगा सकते हैं। इसी प्रकार आयात की कीमत की सीमा को ‘कीमत ट्रिगर’ (price trigger) कहते हैं। अगर कीमत इस सीमा से नीचे गिर जाए तो सुरक्षण शुल्क लगा सकते हैं। अर्थात् ‘ट्रिगर’ ही यह तय करती है कि सुरक्षण शुल्क कब लगाए जा सकेंगे। पर समझने की बात तो यह है कि अगर ‘मात्रा ट्रिगर’ को पहले से ही काफी ऊंचाई पर

³⁶ आयात ‘लहर’ या अत्यधिक कृषि आयात का अर्थ है जब अचानक आयात की मात्रा बहुत ज्यादा बढ़ जाती है या आयात औसत से काफी कम कीमत पर होने लगता है। आयात लहर के स्थानीय उत्पादन और किसानों की आजीविका पर दूरगामी प्रभाव पड़ते हैं। इससे स्थानीय खाद्य सुरक्षा पर भी बहुत प्रभावित होती है क्योंकि आयात मात्रा में अचानक वृद्धि से या कीमतों में गिरावट से घरेलू आर्थिक क्षेत्रों के लिए खतरा बढ़ जाता है।

निर्धारित किया जाए तो इस उपाय का कोई फायदा नहीं बचेगा क्योंकि फिर केवल अपवाद स्वरूप ही इसे लागू किया जा सकेगा। यही स्थिति 'कीमत ट्रिगर' को बहुत नीचे निर्धारित करने पर भी रहेगी।

शायद यही वजह है कि WTO में 'विशेष सुरक्षण उपाय' पर बहस कुछ मुद्दों पर अटक गई है। ये मुद्दे हैं – (क) 'ट्रिगर' – यह उपाय कब लागू होगा; (ख) उपाय का आकार – प्रशुल्क को किस हद तक बढ़ाया जा सकेगा; और (ग) उपाय की अवधि और क्या इसे लगातार 2 वर्षों में लागू किया जा सकता है।

ज्यादातर विकासशील देश दृढ़ता से यह मांग कर रहे हैं कि 'विशेष सुरक्षण उपाय' को लागू करने के तरीके आसान होने चाहिए। यह उपाय अस्थाई होने चाहिए और किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए, क्योंकि घरेलू किसानों को नुकसान से बचाने के लिए समय पर प्रमाण उपलब्ध कराना मुश्किल होगा। इसके अलावा, विकासशील देश यह भी चाहते हैं कि – 'विशेष सुरक्षण उपाय' को सभी कृषि प्रशुल्क क्रमों के ऊपर लागू होने की सम्भावना होनी चाहिए; यह उपाय अतिरिक्त शुल्क के रूप में हो; और इसे नुकसान के अनुपात में तय किया जाए – मतलब जितनी गहरी आयात लहर हो और जितनी ज्यादा कीमत में गिरावट आए उसी अनुपात में उतनी ही ज्यादा अतिरिक्त शुल्क लगाया जाए।

मगर विकसित देश और आयात करने वाले कुछ विकासशील देश जैसे ब्राजील (जी-20 जैसे विकासशील देशों के समूह का सदस्य होने के बावजूद) ने हमेशा 'विशेष सुरक्षण उपाय' का विरोध किया है। इन देशों ने 'विशेष सुरक्षण उपाय' के ऊपर इतनी शर्तें लाद दीं कि इसका होना या न होना बराबर हो गया। उदाहरण के लिए अमेरिका यह चाहता था कि 'विशेष सुरक्षण उपाय' को तभी लागू किया जाए जब आयात की मात्रा 40 प्रतिशत से अधिक बढ़ जाए (आर्थात् पिछले 3 वर्षों की औसत से 140 प्रतिशत ज्यादा हो जाए)। इसे भारत समेत कई विकासशील देशों ने नकार दिया क्योंकि ऐसे में 'विशेष सुरक्षण उपाय' बिल्कुल बेकार हो जाता। अमेरिका ने यह भी सुझाया कि अगर 'कीमत ट्रिगर' तक पहुंच भी जाते हैं तो भी पहले बाजार की जांच होनी चाहिए और पता लगाना चाहिए कि क्या मात्रा में भी वृद्धि हो रही है। यही सुझाव आयात मात्रा ट्रिगर के लिए भी था। यह भी कहा गया कि इस उपाय को दोहा दौर के अन्त तक ही उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इसके अलावा अमेरिका के प्रस्ताव के अनुसार 'विशेष सुरक्षण उपाय' को तभी लागू किया जाना चाहिए जब आयात करने वाला देश यह साबित कर सके कि पिछले 3 वर्षों के आंकड़ों के मुकाबले इस वर्ष आयात की लहर बढ़ी है। अमेरिका की मंशा इस सुरक्षण उपाय के दायरे को इतना सीमित कर देने की थी जिससे यह बिलकुल अनुपयोगी हो जाए³⁷ और ऐसा ही हुआ। दुर्भाग्य से, दिसम्बर 2008 के प्रारूप में ऐसी कई शर्तों को शामिल कर दिया गया जिनकी वजह से 'विशेष सुरक्षण उपाय' की उपयोगिता विकासशील देशों के लिए सीमित हो गई है। मजेदार बात तो यह है कि जिन शर्तों को विकासशील देशों के ऊपर लादा गया है उनमें से कई शर्तें विकसित देशों के SSG के मामले में से बिल्कुल नदारत हैं।

आज भी WTO के कृषि समझौतों में 'विशेष सुरक्षण उपाय' एक विवादास्पद मुद्दा बना हुआ है। दिसम्बर 2015 को नैरोबी मंत्रिस्तरीय बैठक में विकसित देशों ने 'विशेष सुरक्षण उपाय' पर कोई भी बातचीत नहीं होने दिया। यूरोपीय संघ तथा अन्य विकसित देश चाहते हैं कि विकासशील देश 'विशेष सुरक्षण उपाय' की मांग को पूरी तरह से त्याग दें और बदले में कुछ और 'विशेष उत्पाद' ले लें।

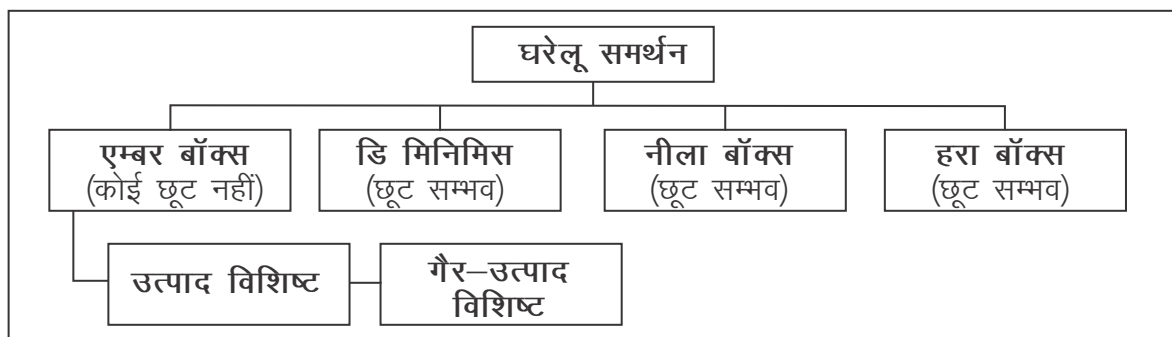
³⁷ जैसा WTO में दिए गए 24 अप्रैल 2006 के अमेरिका के प्रस्ताव में उल्लिखित है।

यह बेहद दुखदपूर्ण है कि भारत के भी कुछ अर्थशास्त्री 'विशेष सुरक्षण उपाय' के खिलाफ विकसित देशों की भाशा बोलने लगे। इनका कहना है कि भारत जैसे विकासशील देशों में बाध्यकारी दर (Bound tariff) और प्रयुक्त दर (Applied tariff) में काफी अन्तर है। इन देशों में प्रयुक्त दरें काफी कम हैं और कहीं-कहीं तो न के बराबर है। इसलिए इन देशों को 'विशेष सुरक्षण उपाय' की मांग के बजाए स्थानीय उत्पादकों के लिए अतिरिक्त सुरक्षण के रूप में पहले अपने बाध्यकारी दरों को बढ़ाना चाहिए। परन्तु सच्चाई यह है कि ऐसे कई कृषि उत्पाद हैं जहां बाध्यकारी दरों और प्रयुक्त दरों में जरा भी अन्तर नहीं है। उदाहरण के तौर पर, भारत में सेब और चावल (मिल वाला) के बाध्यकारी दर और प्रयुक्त दर समान हैं; और दुग्ध एवं मुर्गी उत्पादों या जैतून का तेल के मामले में बाध्यकारी दर और प्रयुक्त दर में अन्तर न्यूनतम है। एक असरदार 'विशेष सुरक्षण उपाय' के न होने पर, भारत जैसे देश के पास अपने किसानों को आकस्मिक आयात 'लहर' से बचाने के लिए कोई साधन नहीं होगा। दुःख की बात तो यह है कि इन अर्थशास्त्रियों ने कभी भी अमेरिका और यूरोपीय संघ के 'विशेष सुरक्षण' के खिलाफ कुछ नहीं कहा।

घरेलू समर्थन (कृषि सब्सिडी) :

सरकार द्वारा किसी कृषि उत्पाद के लिए या सामान्य रूप से (आधारिक संरचना और शोध के लिए) दिए गए वार्षिक वित्तीय सहयोग को घरेलू समर्थन या 'सब्सिडी' कहते हैं। इसमें सीमा-प्रशुल्क और निर्यात-सब्सिडी जैसे उपाय शामिल नहीं हैं। इन घरेलू उपायों को विकसित देशों को ध्यान में रखकर बनाया जाता है, जहां घरेलू समर्थन का स्तर काफी ऊंचा है। इसका मुख्य उद्देश्य किसानों को स्वीकार्य उपायों द्वारा समर्थन प्रदान करना है और व्यापार को विकृत करने वाले अस्वीकार्य उपायों को दूर करना है।

घरेलू समर्थन को 2 श्रेणियों में बांटा गया है—(i) व्यापार विकृत (Trade Distorting) करने वाले (जिनमें छूट नहीं है और जिनमें कटौती अनिवार्य है); और (ii) गैर-विकृत (Non-Trade Distorting) करने वाले (जिन पर छूट सम्भव है और उन्हें कम करने की बाध्यता नहीं है)। इनके साथ-साथ, ये अधिकतम सीमा वाले (Ceiling Level); या बिना सीमा वाले (Non-Ceiling Level) भी हो सकते हैं। घरेलू समर्थन को चार अन्य वर्गों में भी बांटा जा सकता है : (क) एम्बर बॉक्स या समर्थन के समस्त उपाय (Aggregate Measure of Support - AMS), जिसमें उत्पाद विशिष्ट (Product Specific) और गैर-उत्पाद विशिष्ट (Non-Product Specific) समर्थन शामिल हैं; (ख) 'डि मिनिमिस'³⁸ (*de minimis*) समर्थन; (ग) नीला बॉक्स (blue box)



³⁸ यह लैटिन भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ न्यूनतम, सूक्ष्म, तुच्छ या लघु होता है (अतः इसे न्यूनतम समर्थन कह सकते हैं।)

समर्थन; और (घ) हरा बॉक्स (green box) समर्थन। कृषि समझौते के तहत इनमें से सिर्फ एम्बर बॉक्स (AMS) में कटौती अनिवार्य है। अन्य सभी समर्थनों को कटौती प्रतिबद्धता से बाहर रखा गया है।

एम्बर बॉक्स (Amber box) : एम्बर बॉक्स सब्सिडी को व्यापार विकृत करने वाला और उत्पादन को प्रभावित करने वाला माना जाता है। इसलिए इसे कटौती प्रतिबद्धता के तहत रखा गया है। इन उपायों को अन्य WTO के सदस्यों द्वारा कानूनन चुनौती दी जा सकती है।

कृषि समझौते के नियमों के अनुसार 'एम्बर बॉक्स या समर्थन के समस्त उपाय' (AMS) एक मौद्रिक अभिव्यक्ति है जो प्रत्येक वर्ष किसी कृषि उत्पाद के लिए बाजार मूल्य समर्थन के रूप में या गैर-उत्पाद समर्थन (जैसे सिंचाई, बिजली, लोन, खाद्य, बीज इत्यादि) के रूप में दिया जाता है। भले ही कटौती प्रतिबद्धता सामान्य रूप से सभी कृषि उत्पादों पर लागू होती है पर AMS का आकलन किसी विशिष्ट उत्पाद के ऊपर एक सन्दर्भ अवधि में किए गए खर्च के आधार पर किया जाता है। AMS का आकलन के दो मूल मानदण्ड हैं –(i) कीमतों पर उसका असर; और (ii) सरकार को लागत। समर्थन की गणना घरेलू बाजार कीमत (जैसे भारत का न्यूनतम समर्थन मूल्य) और बाहरी सन्दर्भ मूल्य³⁹ (external reference price) के बीच के अन्तर को उत्पादन की मात्रा (जो सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य के लिए योग्य है) के साथ गुणा करके प्राप्त किया जाता है। AMS की गणना में बजट लागत (अर्थात् सरकार द्वारा किसी उत्पाद के समर्थन में किया गया खर्च) और राजस्व के नुकसान (राष्ट्रीय या उप-राष्ट्रीय स्तर पर) को भी शामिल किया जाता है।

कुल AMS की उच्चतम सीमा को विकसित देशों के लिए उनके कुल कृषि उत्पादन (गैर-उत्पाद विशिष्ट समर्थन) का 5 प्रतिशत निश्चित किया गया है। विकासशील देशों के लिए यह सीमा 10 प्रतिशत की है। इसी प्रकार 'प्रत्येक कृषि उत्पाद' (उत्पाद विशिष्ट समर्थन) को AMS के अन्तरगत आने के लिए उत्पादन मूल्य⁴⁰ का 5 प्रतिशत (विकसित देशों के लिए) और 10 प्रतिशत (विकासशील देशों के लिए) की सीमा से अधिक होना चाहिए, अन्यथा इसे डि मिनिमिस समर्थन माना जाएगा। अगर समर्थन डि मिनिमिस स्तर से ज्यादा है तो पूरे समर्थन (सिर्फ डि मिनिमिस स्तर के ऊपर के हिस्से पर नहीं बल्कि सम्पूर्ण समर्थन) को AMS माना जायेगा। डि मिनिमिस सब्सिडी से किसानों के उत्पादन पर ज्यादा असर नहीं पड़ता है और इससे व्यापार भी विकृत नहीं होता है। इसलिए इसे कटौती प्रतिबद्धता से बाहर रखा गया है।

कृषि समझौते के अनुसार जिन सदस्य देशों ने मूल अवधि (वर्ष 1986–88) के दौरान अपने AMS की घोषणा की है, उन्हें अपने समर्थन को सीमित करने के प्रयास शुरू करने होंगे। इस प्रयासों में शामिल है :

- (i) घरेलू समर्थन को वर्ष 1986–88 के औसत स्तर पर रोकना;
- (ii) विकसित देशों के लिए – अगले 6 वर्षों में (वर्ष 2000 तक) 20 प्रतिशत की कटौती करना; और
- (iii) विकासशील देशों के लिए – अगले 10 वर्षों में (वर्ष 2004 तक) 13 प्रतिशत की कटौती करना।

कम विकसित देशों के लिए कटौती अनिवार्य नहीं है। कटौती प्रतिबद्धता केवल AMS स्तर पर लागू होती है,

³⁹ स्थाई बाहरी संदर्भ मूल्य (External reference price) वर्ष 1986 से 1988 के ऊपर आधारित होता है (या जैसे सदस्यों के समझौते में उल्लिखित हो)। इसे 'फ्री ऑन बोर्ड' (free on board) यूनिट के औसत मूल्य या 'कॉस्ट इंश्योरेंस फ्रेट' (cost insurance freight) के औसत मूल्य के आधार पर तय किया जाता है।

⁴⁰ उत्पादन मूल्य (value of production-VoP) = खेत का मूल्य (farmgate price) X उस फसल का कुल उत्पादन

न कि प्रत्येक उत्पाद के स्तर पर। अन्य शब्दों में, WTO सदस्यों को प्रत्येक उत्पाद (या उत्पाद श्रेणी) के समर्थन में कटौती करना अनिवार्य नहीं है। यदि वे चाहें तो किसी क्षेत्र में सब्सिडी बचाकर किसी दूसरे उत्पाद को ज्यादा सब्सिडी दे सकते हैं; पर उन्हें कुल सब्सिडी की मात्रा उच्चतम सीमा से कम रखना होगा।

WTO में घरेलू समर्थन का उच्चतम स्तर बाध्यकारी⁴¹ है। उरुग्वे वार्ता के दौरान 131 में से 30 सदस्यों⁴² ने अपने AMS समर्थन की घोषणा की थी। बचे हुए 101 सदस्य देशों ने कहा कि वर्ष 1986–88 के मूल अवधि (Base period) में उन्होंने कोई समर्थन नहीं दिया था या उनका AMS शून्य था। इसलिए इनके ऊपर कटौती प्रतिबद्धता लागू नहीं होती है। भारत भी इन्हीं देशों में से एक है।

जिन 101 सदस्य देशों ने (जिनमें अधिकतर विकासशील देश शामिल हैं) अपनी AMS की घोषणा नहीं की थी, उनके पास भविष्य में भी AMS का अधिकार नहीं है। वे केवल डि मिनिमिस स्तर तक ही समर्थन दे सकते हैं। इसका मतलब यह है कि इन देशों के लिए उनका डी मिनिमिस स्तर ही वास्तविक ऊपरी सीमा है।⁴³ वर्ष 2010–11 के आकड़ों⁴⁴ के अनुसार, भारत का कुल समर्थन 10 प्रतिशत की डि मिनिमिस सीमा से काफी कम था। इसलिए भारत के सामने इसे और कम करने की कोई बाध्यता नहीं है।

नीचे दी गई तालिका 1 में हम यूरोपीय संघ और अमेरिका के बाध्यकारी AMS और मौजूदा AMS देख सकते हैं। यूरोपीय संघ के लिए 20 प्रतिशत कटौती के बाद बाध्यकारी AMS अब 6720 करोड़ (67.2 बिलियन) यूरो हो गई है; और अमेरिका के लिए 1989 करोड़ (19.89 बिलियन) अमेरिकी डॉलर। हम यह स्पष्ट देख सकते हैं कि इनके बाध्यकारी AMS और मौजूदा AMS में काफी बड़ा अन्तर है। अथात् ये देश अभी भी बिना प्रतिबद्धता तोड़े अपने घरेलू समर्थन को कई गुना बढ़ा सकते हैं।

तालिका 1 : यूरोपीय संघ और अमेरिका के बाध्यकारी AMS और मौजूदा AMS

वर्ष	यूरापीय संघ (बिलियन यूरो में)		अमेरिका (बिलियन डॉलर में)	
	कुल बाध्यकारी AMS	कुल मौजूदा AMS	कुल बाध्यकारी AMS	कुल मौजूदा AMS
1995	78.7	50.181	23.083	6.214
1996	76.4	51.163	22.287	5.898
1997	74.1	50.346	21.492	6.238
1998	71.8	46.947	20.695	10.392
1999	69.5	48.157	19.899	16.862
2000	67.2	43.909	19.899	16.843
2001	67.2	39.391	19.899	14.482

⁴¹ WTO की प्रतिबद्धता सूची के भाग-4 में क्रियावयन अवधि के दौरान वार्षिक बाध्यकारी प्रतिबद्धता स्तर का विवरण है

⁴² https://www.wto.org/english/tratop_e/agric_e/negs_bkgrnd07_domestic_e.htm

⁴³ FAO Commodity and Trade Policy Research Working paper no. 45; <http://www.fao.org/3/a-i3819e.pdf>

⁴⁴ सितम्बर 2004 में भारत ने सात वर्षों (2004–05 से 2010–11) के घरेलू समर्थन के बारे में WTO को अधिसूचित किया था

2002	67.2	28.598	19.899	9.637
2003	67.2	30.891	19.899	6.950
2004	67.2	31.214	19.899	11.629
2005	67.2	28.427	19.899	12.943
2006	67.2	26.632	19.899	7.742
2007	67.2	12.354	19.899	6.260
2008	67.2	11.796	19.899	6.255
2009	67.2	10.883	19.899	4.267
2010	67.2	6.502	19.899	4.120
2011	-	-	19.899	4.654

स्त्रोत : WTO अधिसूचना

नीला बॉक्स (Blue Box) : यह उत्पादन को सीमित करने वाला कार्यक्रम है जिसमें उत्पादकों को सीधे भुगतान किया जाता है, मगर शर्त यह है कि :

- (i) यह भुगतान निश्चित क्षेत्र या उत्पादन पर आधारित हो; या
- (ii) अगर मवेशी सम्बन्धी भुगतान हो तो पशुओं की निश्चित संख्या पर आधारित हो; या
- (iii) उत्पादन के मूल स्तर (base level) के 85 प्रतिशत या उससे कम हो ।

अगर सरकार का समर्थन कार्यक्रम इन तीनों शर्तों को पूरा करते हैं तो उनके ऊपर कटौती प्रतिबद्धता लागू नहीं होगी। नहीं तो, इन्हें एम्बर बॉक्स (AMS) सब्सिडी के रूप में देखा जाएगा (डि मिनिमिस स्तर के ऊपर होने पर)। विकासशील देशों के लिए नीला बॉक्स ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इन देशों में उत्पादन सीमित करने वाले समर्थन कार्यक्रम नहीं के बराबर होते हैं।

नीले बॉक्स सब्सिडी का आंकलन एक पूर्व अवधि के स्थाई उत्पादन आंकड़े पर आधारित होता है। नीले बॉक्स में मवेशी या भूमि के लिए जो अनुदान शामिल होता है वह उनकी कीमत से नहीं बल्कि निश्चित संख्या, क्षेत्रफल या उत्पादन से जुड़ा होता है। इस प्रकार अगर कोई समर्थन किसानों के उत्पादन को सीमित करता है तो विकसित देश उसे नीले बॉक्स में डाल देते हैं, भले ही वह एम्बर बॉक्स सब्सिडी क्यों न हो। नीले बॉक्स का दूसरा उद्देश्य यह है कि देशों की एम्बर बॉक्स सब्सिडी को धीरे-धीरे हरे बॉक्स में बदलने के लिए प्रेरित करना और उन्हें सक्षम बनाना। क्योंकि नीले बॉक्स में शर्तें निहित हैं, इसलिए उनके ऊपर मात्रात्मक प्रतिबन्ध नहीं लगाए गए हैं। इसका मतलब यह है कि जो देश जितना चाहे उतनी सब्सिडी नीले बॉक्स के तहत प्रदान कर सकते हैं।

तालिका 2 से हम अमेरिका और यूरोपीय संघ के साथ-साथ भारत के नीले बॉक्स के खर्च भी देख सकते हैं। भारत में नीले बॉक्स के तहत कोई खर्च नहीं किया गया। वर्ष 1996 के बाद से अमेरिका ने नीले बॉक्स समर्थन के बारे में WTO बताना बन्द कर दिया था, क्योंकि 'अमेरिका फॉर्म बिल, 1973' के तहत चल रहा अमेरिका का कार्यक्रम 1996 में बन्द हो गया। इसके बाद अमेरिका ने अपने ज्यादातर नीले बॉक्स सब्सिडी को हरे बॉक्स में डालना शुरू कर दिया।

तालिका 2 : अमेरिका, यूरोपीय संघ और भारत में नीले बॉक्स समर्थन

वर्ष	भारत	अमेरिका (बिलियन अमेरिकी डॉलर में)		यूरोपीय संघ (बिलियन यूरो में)		
		मूल स्तर उत्पादन के 85 प्रतिशत या उससे कम पर भुगतान	कुल नीला बॉक्स	स्थायी क्षेत्र और उत्पादन के आधार पर भुगतान	मवेशियों के स्थायी संख्या पर भुगतान	कुल नीला बॉक्स
1995	शून्य	7.030	7.030	15.648	5.197	20.845
1996	शून्य	-	-	17.193	4.327	21.521
1997	शून्य	-	-	16.191	4.251	20.443
1998	शून्य	-	-	15.977	4.526	20.504
1999	शून्य	-	-	15.128	4.664	19,792
2000	शून्य	-	-	16.825	5.397	22.223
2001	शून्य	-	-	18.144	5.581	23.726
2002	शून्य	-	-	16.267	8.459	24,727
2003	शून्य	-	-	17.073	7.708	24.782
2004	शून्य	-	-	17.573	9.663	27.237
2005	शून्य	-	-	8.263	5.181	13.445
2006	शून्य	-	-	2.885	2.811	5.697
2007	शून्य	-	-	2.891	2.274	5.166
2008	शून्य	-	-	3.089	2.258	5.348
2009	शून्य	-	-	3.063	2.259	5.324
2010	शून्य	-	-	-	-	3.142

स्रोत : WTO अधिसूचना

हरा बॉक्स (Green Box) : यह सबसे ज्यादा विवादास्पद घरेलू समर्थन है, जिसका विकसित देशों ने, खासतौर से यूरोपीय संघ और अमेरिका ने बहुत दुरुपयोग किया है। हरे बॉक्स समर्थन को व्यापार विकृत करने वाला नहीं माना जाता है। इसे आर्थिक रूप से निष्पक्ष भी माना गया है। इसलिए इस पर कोई कटौती प्रतिबद्धता लागू नहीं होती।

हरे बॉक्स को कृषि समझौते के अनुलग्न 2 (Annex 2) में सूचिबद्ध किया गया है। इन उपायों को इसीलिए प्रतिबद्धता से बाहर रखा गया है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि इनसे उत्पादन प्रभावित नहीं होते हैं और होते भी हैं तो नहीं के बराबर। दूसरा, इस समर्थन को सरकारी कार्यक्रम द्वारा ही दिया जा सकता है (जिसमें सरकारी राजस्व से भुगतान हो रहा हो) और उपभोक्ताओं का इसमें कोई योगदान शामिल नहीं होता है।

तीसरा, इससे उत्पादन में कोई असर नहीं पड़ता है। इस प्रकार, हरे बॉक्स को दो बड़ी श्रेणियों में बांटा जा सकता है –(i) सरकारी कार्यक्रम; और (ii) उत्पादक को सीधे भुगतान। हरे बॉक्स के तहत किए जा रहे खर्च को किसी भी हद तक बढ़ाया जा सकता है, क्योंकि इसे कानूनी कार्यवाही से बाहर रखा गया है। हरे बॉक्स विकसित और विकासशील देश, दोनों के लिए उपलब्ध है। हरे बॉक्स में निम्नलिखित उपाय शामिल हैं:

- सामान्य सेवाओं का प्रावधान: इनमें शोध, कीट और रोग नियंत्रण, प्रशिक्षण, प्रसार, जांच, विपणन (marketing) और संवर्धन सेवाएं और आधारिक संरचना (जैसे जल आपूर्ति और जल निकास) शामिल हैं। वर्ष 2013 के बाली मंत्रिस्तरीय बैठक में विकासशील देशों के लिए भूमि सुधार और ग्रामीण आजीविका सुरक्षा से सम्बन्धित कई समर्थन नीतियों को हरे बॉक्स के तहत सामान्य सरकारी सेवाओं में जोड़ा गया है, जैसे : भूमि पुनर्वास; मृदा संरक्षण और संसाधन प्रबन्धन; सूखा प्रबन्धन और बाढ़ नियन्त्रण; ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम; सम्पत्ति पर मालिकाना; किसान बंदोबस्त (settlement) कार्यक्रम; इनका उद्देश्य ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन था।⁴⁵
- सार्वजनिक अभिग्रहण (public acquisition) और खाद्य भण्डारण : इसमें **मौजूदा बाजार मूल्य** पर सार्वजनिक अभिग्रहण और खाद्य सुरक्षा के लिए उत्पादों का भण्डारण शामिल है। इन्हें राष्ट्रीय स्तर पर कानूनन गठित खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम का अभिन्न हिस्सा होना चाहिए और वित्तीय रूप से पारदर्शी। परन्तु, यदि खाद्य को **सरकारी निर्धारित मूल्य (administered price)** (इसे भारत में न्यूनतम समर्थन मूल्य) में खरीदा गया है तो सब्सिडी के हिस्से को सूचित करना होगा और इसे एम्बर बॉक्स सब्सिडी माना जायेगा। इस मुद्दे को विस्तार पूर्वक भाग 6 में दिया गया है।
- घरेलू खाद्य सहायता (Domestic Food Aid) का प्रावधान : जिसकी योग्यता और पोषण मानदण्ड स्पष्ट रूप से परिभाषित हो, जो वित्तीय रूप से पारदर्शी हो, और जिसे मौजूदा बाजार मूल्य पर खरीदा जाए।
- प्राकृतिक आपदाओं से राहत : यह तभी लागू होता है जब उत्पादक का नुकसान औसत उत्पादन से 30 प्रतिशत से ज्यादा हो और जिसका मुआवजा उत्पादन में हुए नुकसान से ज्यादा न हो।
- उत्पादक और संसाधन निवृत्ति कार्यक्रम द्वारा ढांचागत समायोजन : यह उत्पादकों को अपने गतिविधियों को स्थाई रूप से बन्द करने या गैर-कृषि गतिविधियों में बदलने के लिए प्रेरित करता है और निवेश सहायता प्रदान करता है।
- पर्यावरणीय और क्षेत्रीय सहायता कार्यक्रम,
- और विवादास्पद, आय सहायता : यह उस उत्पादक को दिया जाता है जिसकी आय में 30 प्रतिशत से ज्यादा नुकसान हुआ हो। यह सहायता कुल आय के नुकसान के 70 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होना चाहिए। इसका उत्पादन और कीमतों के मौजूदा स्तर से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

⁴⁵ https://www.wto.org/english/thewto_e/minist_e/mc9_e/desci37_e.htm

इन उपायों को कटौती प्रतिबद्धता से इसलिए बाहर रखा गया क्योंकि इनसे व्यापार विकृत नहीं होता है। हालांकि, UNCTAD के अध्ययन⁴⁶ के अनुसार विकसित देश हरे बॉक्स सब्सिडी कार्यक्रम से जुड़ी शर्तों का पालन नहीं कर रहे हैं। इसका व्यापार के ऊपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। इस अध्ययन के अनुसार, अगर इन व्यापार विकृत करने वाले कार्यक्रमों को हरे बॉक्स से हटा लिया जाए तो कई विकसित देशों में उत्पादन खर्च 15 से 30 प्रतिशत बढ़ जाएंगे और उनके निर्यात में 40 से 60 प्रतिशत की कमी आ जाएगी। इसके विपरीत विकासशील देश और यहां तक कि कम विकसित देशों (LDC) के निर्यात में भी 20 प्रतिशत की वृद्धि हो सकेगी। वैश्विक स्तर पर आयात में गिरावट आएगी। करीब-करीब सभी विकासशील देशों में कृषि रोजगार बढ़ेंगे। कुशल और अकुशल रोजगार में वृद्धि के कारण गरीबी में कमी आएगी। विकासशील देशों में करीब 3 से 5 प्रतिशत तक रोजगार बढ़ेंगे जो श्रमिकों की संख्या का सामान्य वृद्धि दर से कहीं ज्यादा है। मजदूरी में भी, विकासशील देशों में औसतन 1 प्रतिशत की वृद्धि होगी। कम विकसित देशों में सबसे ज्यादा फायदा देखने को मिलेंगे। इस प्रकार हरे बॉक्स सब्सिडी को कम करने के महत्वपूर्ण परिणाम देखने को मिलेंगे।

विकसित देश हमेशा यह दावा करते हैं कि हरे बॉक्स सब्सिडी से व्यापार विकृत नहीं होता है। भारत जैसे विकासशील देशों ने हमेशा इसे संदेह की नजर से देखा है क्योंकि विकसित देशों की प्रवृत्ति हमेशा अपने व्यापार विकृत करने वाली सब्सिडी को एम्बर बॉक्स से हटाकर हरे बॉक्स में डालने की रही है। इसी वजह से विकासशील देश हमेशा यह मांग करते रहे हैं कि हरे बॉक्स सब्सिडी की परिभाषा कानूनी तौर पर स्पष्ट और सटीक होनी चाहिए और इसका सख्ती से पालन होना चाहिए।

विकसित देशों ने हमेशा अपनी व्यापार विकृत करने वाली सब्सिडी को जारी रखने के लिए अपनी सब्सिडी के वर्गीकरण में हेर-फेर करते आए हैं, जैसे सब्सिडी को एम्बर बॉक्स से हटाकर हरे बॉक्स या नीले बॉक्स में डाल देना। दूसरी तरफ विकासशील देशों को जो छूट मिली है उसका वे अकसर ज्यादा फायदा नहीं उठा पाते हैं क्योंकि लम्बे समय से चलते आ रहे नकारात्मक वित्तीय स्थिति के कारण बहुत सारे देश जैसे ही अपने किसानों को सब्सिडी दे सकते हैं। इन तमाम कमियों के कारण यह कहा जा सकता है कि विकसित देशों के व्यापार विकृत करने वाले गलत तरीकों को कृषि समझौते से और ज्यादा मजबूती और वैद्यता प्राप्त होती है।

तालिका 5 और 6 से स्पष्ट हो जाता है कि वर्ष 1995-2010 के दौरान यूरोपीय संघ और अमेरिका ने कैसे अपने घरेलू समर्थन को एम्बर बॉक्स से हटा कर हरे बॉक्स में डाल दिया। यूरोपीय संघ के मामले में वर्ष 1995 में एम्बर बॉक्स में घरेलू समर्थन 5018 करोड़ यूरो से घटकर वर्ष 2010 में 650 करोड़ यूरो हो गया जबकि इसी दौरान हरा बॉक्स सब्सिडी वर्ष 1995 में 1878 करोड़ यूरो से बढ़कर 2010 में 6805 करोड़ यूरो हो गया। यही हाल अमेरिका का भी रहा।

इनके मुकाबले भारत की हरा बॉक्स सब्सिडी नगण्य रहा। कृपया तालिका 3 देखें।

⁴⁶ http://wtocentre.iift.ac.in/DOC/Studies_GreenBoxSubsidiesATheoreticalAndEmpericalAssessmen.pdf

तालिका 3 : भारत की हरा बॉक्स सब्सिडी, विभिन्न श्रेणियों में (मिलियन अमेरिकी डॉलर में)

वर्ष	सामान्य सेवा	खाद्य सुरक्षा के लिए सार्वजनिक खाद्य भण्डारण	सीधा भुगतान	कुल हरा बॉक्स
1995-1996	398	1570	228	2196
1996-1997	239	1709	554	2502
1997-1998	265	2018	590	2873
1998-1999	84	2068	124	2276
1999-2000	85	2123	284	2493
2000-2001	86	2629	136	2851
2001-2002	100	3668	234	4002
2002-2003	100	4996	141	5237
2003-2004	113	5476	294	5883
2004-2005	352	5730	101	6183
2005-2006	488	5211	207	5907
2006-2007	648	5640	205	6493
2007-2008	821	7768	977	9567
2008-2009	872	9495	6560	16,927
2009-2010	776	12,282	4323	17,381
2010-2011	1124	13,812	4542	19,472

स्रोत : भारत द्वारा WTO को घरेलू समर्थन पर अधिसूचना

भारत की ताजा अधिसूचना के अनुसार हमारी कुल सब्सिडी करीब 5108 करोड़ अमेरिकी डॉलर है जिसमें मुख्यतः हरा बॉक्स सब्सिडी और अनुच्छेद 6.2 के तहत दी गई सब्सिडी (जो आमतौर पर निम्न-आय या संसाधनहीन उत्पादकों को दिया जाता है) शामिल है।

तालिका 4 : अनुच्छेद 6.2 के तहत भारत की सब्सिडी (मिलियन अमेरिकी डॉलर में)

वर्ष	निवेश सब्सिडी	इन्पुट सब्सिडी (आमतौर पर निम्न-आय या संसाधनहीन उत्पादकों के लिए)	अनुच्छेद 6.2 के तहत कुल सब्सिडी
1995-1996	105	150	254
1996-1997	1117	3738	4855
1997-1998	1143	4029	5172
1998-1999	2	6757	6759
1999-2000	2	7163	7165

2000-2001	1	8478	8478
2001-2002	2	8252	8254
2002-2003	3	7338	7341
2003-2004	4	9021	9026
2004-2005	408	10,281	10,689
2005-2006	485	11,831	12,316
2006-2007	629	14,907	15,536
2007-2008	1135	21,177	22,312
2008-2009	1466	29,989	31,459
2009-2010	1614	28,241	29,856
2010-2011	2530	29,078	31,610

स्रोत : भारत द्वारा WTO को घरेलू समर्थन पर अधिसूचना

इस सन्दर्भ में यह जानना आवश्यक है कि घरेलू समर्थन के लिए 'विशेष एवं विभिन्न व्यवहार' (Special and Differential Treatment) के प्रावधान के तहत विकासशील देशों को खाद्य सुरक्षा के लिए सरकारी कीमतों (Administered Price / Minimum Support Price) पर खाद्य भण्डारण की अनुमति है, पर शर्त यह है कि इन्हें एम्बर बॉक्स में गिना जायेगा अगर ये 10 प्रतिशत की डी-मिनिमिस में दी हुई छूट से उपर जाता है। विकासशील देश अपने शहरी और ग्रामीण गरीबों की जरूरतों को पूरा करने के लिए सब्सिडी वाले खाद्य का वितरण कर सकते हैं। 'विशेष एवं विभिन्न व्यवहार' के प्रावधानों के अनुसार विकासशील देशों में कृषि और ग्रामीण विकास को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार निम्न-आय वाले किसानों को अनुच्छेद 6.2 के तहत निवेश सब्सिडी और कृषि सामग्री (इन्पुट) सब्सिडी दे सकती है। अनुच्छेद 6.2 के तहत दी गई सब्सिडी को कटौती प्रतिबद्धता से बाहर रखा गया है। WTO के अन्दर निम्न-आय और संसाधनहीन किसान की कोई विशिष्ट परिभाषा नहीं है इसलिए प्रत्येक विकासशील देशों को अपने हिसाब से इसे परिभाषित करने की छूट है। भारत की अधिसूचना के अनुसार – "कोई भी किसान जिसके पास 10 हेक्टेयर से कम जमीन है, वह निम्न-आय संसाधनहीन किसान माना जाएगा"। इस परिभाषा के अनुसार भारत के करीब 99 प्रतिशत कृषि भूमि इस श्रेणी के अन्दर आ जाएगी। इस प्रकार भारत के सामने कृषि क्षेत्र में अनुच्छेद 6.2 के तहत दिए जा रहे सब्सिडी को कम करने की कोई प्रतिबद्धता नहीं है।

कृषि सब्सिडी में कटौती : एक असफल मुद्दा

WTO के 20 वर्षों के इतिहास में, विकसित देशों की कृषि सब्सिडी हमेशा कृषि समझौतों में अड़चने पैदा करता रहा है। खासतौर से अमेरिका और विकासशील देशों के बीच यह विवाद का एक बड़ा मुद्दा रहा है। आज तक, WTO के सदस्य इस बात पर सहमत नहीं हो पाए हैं कि कैसे विकसित देशों की भारी भरकम सब्सिडी को कम किया जाए, जिनकी वजह से विकासशील देशों के लघु व सीमान्त किसानों पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

दोहा वार्ता के दौरान कई बार विकसित देशों को अपने घरेलू समर्थन कम करने के लिए प्रेरित किया गया। सब्सिडी कटौती के लिए एक नई अवधारणा भी प्रस्तुत की गई, जिसे "व्यापार विकृत करने वाला समस्त

घरेलू समर्थन'' (Overall trade-distorting domestic support – OTDS) कहा गया। इसे तीन घटकों को जोड़ कर बनाया गया है –(i) एम्बर बॉक्स, (ii) डी मिनिमिस; और (iii) नीला बॉक्स; हरे बॉक्स को अलावा सभी। इस प्रकार OTDS का अर्थ है : एम्बर बॉक्स + नीला बॉक्स + डि मिनिमिस, जैसा तालिका 6 और 7 में अमेरिका और यूरोपीय संघ के लिए दिखाया गया है। जुलाई 2004 के बाद से, OTDS एक केंद्रीय मुद्दा रहा है। WTO के सदस्यों के बीच OTDS पर बहस का एक प्रमुख हिस्सा यह है कि कटौती और दूसरे नियमों को निर्धारित करने का आधार कैसे तैयार किया जाए।

तालिका 5 : WTO अधिसूचना के आधार पर अमेरिका का घरेलू समर्थन

(मिलियन अमेरिकी डॉलर में)						
वर्ष	कुल एम्बर	कुल नीला	कुल डि मिनिमिस	OTDS	कुल हरा	कुल घरेलू समर्थन
1995	6,214	7,030	1,643	14,887	46,041	60,928
1996	5,898	-	1,175	7,072	51,825	58,897
1997	6,238	-	812	7,050	51,252	58,302
1998	10,392	-	4,750	15,142	49,820	64,962
1999	16,862	-	7,435	24,297	49,749	74,046
2000	16,843	-	7,341	24,184	50,057	74,241
2001	14,482	-	7,054	21,536	50,672	72,208
2002	9,637	-	6,690	16,328	58,322	74,650
2003	6,950	-	3,237	10,187	64,062	74,249
2004	11,629	-	6,458	18,087	67,425	85,512
2005	12,943	-	5,980	18,923	72,328	91,251
2006	7,742	-	3,601	11,343	76,035	87,378
2007	6,260	-	2,260	8,520	76,162	84,682
2008	6,255	-	9,971	16,226	86,218	102,444
2009	4,267	-	7,258	11,525	103,214	114,739
2010	4,119	-	5,665	9,784	120,531	130,315
2011	4,654	-	9,714	14,368	125,117	139,485

तालिका 6 : WTO अधिसूचना के आधार पर यूरोपीय संघ का घरेलू समर्थन

(मिलियन यूरो में)						
वर्ष	कुल एम्बर	कुल नीला	कुल डि मिनिमिस	OTDS	कुल हरा	कुल घरेलू समर्थन
1995	50,181	20,846	825	71,852	18,779	90,631
1996	51,163	21,521	761	73,445	22,130	95,576
1997	50,346	20,443	733	71,521	18,167	89,688
1998	46,947	20,504	525	67,975	19,168	87,143
1999	48,157	19,792	554	68,502	21,916	90,419
2000	43,909	22,223	745	66,876	21,848	88,724
2001	39,391	23,726	1,012	64,128	20,661	84,790
2002	28,598	24,727	1,942	55,266	20,404	75,670
2003	30,891	24,782	1,954	57,626	22,074	79,700
2004	31,214	27,237	2,042	60,493	24,391	84,884
2005	28,427	13,445	1,251	43,123	40,280	83,404
2006	26,632	5,697	1,975	34,304	56,530	90,833
2007	12,354	5,166	2,389	19,909	62,610	82,519
2008	11,796	5,348	1,083	18,226	62,825	81,051
2009	10,883	5,324	1,393	17,600	63,798	81,398
2010	6,502	3,142	1,393	11,037	68,052	79,088

दिसम्बर 2008 का प्रारूप (TN/AG/W/4/Rev.4) में एक विभिन्न स्तर (Tier) वाले सूत्र का प्रस्ताव रखा गया, जिसमें OTDS में कटौती के साथ-साथ घरेलू समर्थन के निजी श्रेणियों (एम्बर बॉक्स, नीला बॉक्स और हरा बॉक्स) में भी कटौती का प्रावधान था। इस प्रारूप के अनुसार अमेरिका और जापान को OTDS में 60 प्रतिशत कटौती करनी थी (उनके के लिए जिस देश में OTDS 1000 से 6000 करोड़ अमेरिकी डॉलर के बीच हो), और यूरोपीय संघ (उनके के लिए जिस देश में OTDS 6000 करोड़ अमेरिकी डॉलर से ज्यादा हो) को 80 प्रतिशत कटौती करना था। अन्य विकसित देशों को, जो OTDS में 1000 करोड़ अमेरिकी डॉलर से कम खर्च करते हैं, को अपने समर्थन में 55 प्रतिशत की कटौती करनी थी।

हालांकि जिस तरीके से विकसित देशों के लिए OTDS के आधार तय किये गये हैं, विशेष रूप से अमेरिका (48.3 बिलियन डॉलर)⁴⁷ और यूरोपीय संघ (110.3 बिलियन डॉलर)⁴⁸, उससे 60 प्रतिशत और 80 प्रतिशत की बड़ी कटौती करने के बाद भी उनकी वास्तविक सब्सिडी पर कोई खास फर्क नहीं पड़ेगा। तालिका 7 से यह स्पष्ट हो जाता है :

⁴⁷ http://www.southcentre.int/wp-content/uploads/2013/08/AN_AG14_Comments-on-WTO-Agriculture-2011-Report_EN.pdf

⁴⁸ *ibid*

तालिका 7

टियर (स्तर)	ऊपरी सीमा (बिलियन अमेरिकी डॉलर)	मूल OTDS	कटौती	कटौती के बाद OTDS	वास्तविक OTDS (वर्ष 2010 में)
1	60 बिलियन अमेरिकी डॉलर से ज्यादा (यूरोपीय संघ के लिए)	110.3 बिलियन यूरो	80%	22 बिलियन यूरो	11 बिलियन यूरो
2	10 से 60 बिलियन अमेरिकी डॉलर के बीच (अमेरिका और जापान के लिए)	48.3 बिलियन डॉलर	60%	14.5 बिलियन डॉलर	9.8 बिलियन डॉलर
3	10 बिलियन अमेरिकी डॉलर से कम (अन्य विकसित देशों के लिए)		55%		

करीब 60 प्रतिशत की कटौती के बाद भी अमेरिका की बाध्यकारी OTDS 14.5 बिलियन डॉलर होती है जबकी वास्तविक OTDS 9.8 बिलियन डॉलर से काफी ऊपर है। अर्थात् कटौती की बात तो दूर अमेरिका चाहे तो अपनी व्यापार विकृत करने वाली सब्सिडी को 4.7 बिलियन डॉलर ज्यादा बढ़ा सकता है।

ठीक इसी तरह यूरोपीय संघ के लिए प्रस्तावित 80 प्रतिशत की कटौती करने के बाद उसका बाध्यकारी OTDS करीब 22 बिलियन यूरो हो जाएगा, जो वर्ष 2010 की वास्तविक OTDS (11 बिलियन यूरो) से दुगना है। अतः विकसित देशों को अपने वास्तविक OTDS को कम करने की कोई जरूरत नहीं है। इस तरह से यह स्पष्ट हो जाता है कि जो देश पहले से अत्यधिक सब्सिडी दे रहे हैं, उनके पास अभी भी और ज्यादा सब्सिडी देने का अवसर है।

नैरोबी मंत्रिस्तरीय बैठक तक विकसित देशों की सब्सिडी बहस का भी मुद्दा नहीं था। इसके विपरीत विकसित देश विकासशील देशों की छोटी-मोटी सब्सिडी का विरोध कर रहे थे। अमेरिका ने भारत पर यह आरोप लगाया कि वह अनुच्छेद 6.2 के तहत अत्यधिक सब्सिडी दे रहा है। इसके साथ ही अमेरिका ने अनुच्छेद 6.2 को रद्द⁴⁹ करने का भी प्रस्ताव रखा जो विकासशील देशों को 'विशेष और विभिन्न व्यवहार' के तहत थोड़ी छूट देता है। अमेरिका और यूरोपीय संघ अपनी घरेलू सब्सिडी में कटौती प्रतिबद्धता को पूरी करने के बजाए भारत, चीन, इंडोनेशिया, दक्षिण अफ्रीका और अन्य विकासशील देशों में सब्सिडी कटौती करने के लिए दबाव डाल रहे हैं। विकसित देशों ने विकासशील देशों द्वारा संसाधनहीन किसानों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए दिए जा रहे मूल्य समर्थन सब्सिडी का भी जोरदार विरोध किया, जो इन देशों के सार्वजनिक खाद्य भण्डारण कार्यक्रम का हिस्सा है, जैसे भारत की जन वितरण प्रणाली (Public Distribution System)।

⁴⁹ Azevedo issues sanitized version of 'consultation' meetings; SUNS #8034; 4 June 2015

निर्यात सब्सिडी (Export Subsidy)

निर्यात सब्सिडी की मदद से सरकार विदेश में व्यापार करने के लिए प्रोत्साहित करती है। इसके जरिए अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में वहां के घरेलू बाजार की किमतों से कम दाम में माल के निर्यात में मदद की जाती है। इस प्रकार की सब्सिडी आमतौर पर विकासशील देशों के गरीब उत्पादकों और निर्यातकों के लिए नुकसानदेह होती है। दरअसल 'निर्यात सब्सिडी' और 'व्यापार उदारीकरण' इतने विरोधात्मक हैं कि गैट के शुरुआती दिनों से ही कृषि के अलावा अन्य सभी उत्पादों के निर्यात सब्सिडी पर प्रतिबन्ध लगे हुए हैं। कृषि में यह इसलिए चलता आ रहा है क्योंकि यह अमेरिका और यूरोपीय संघ के लिए फायदेमन्द है। यही वे देश हैं जो निर्यात सब्सिडी का विश्व में सबसे ज्यादा फायदा उठा रहे हैं। मजेदार बात तो यह है कि कृषि समझौता इसे 'डम्पिंग' के रूप में नहीं, बल्कि 'निर्यात सब्सिडी' या 'निर्यात प्रतिस्पर्धा' के रूप में देखता है। विकासशील देशों को शायद ही कभी ऐसी सब्सिडी देने का अवसर मिला हो। निर्यात सब्सिडी के कारण अन्य देशों के निर्यातकों को ज्यादा कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है, क्योंकि इससे उनके माल की कीमतें काफी गिर जाती हैं। इस प्रकार जो देश निर्यात सब्सिडी में समर्थ हैं वे गरीब देशों के कम-लागत वाले उत्पादकों के हाथ से सारा बाजार छीन लेते हैं। इनकी वजह से अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कीमतें गिर जाती हैं और उनमें उतार-चढ़ाव बढ़ने लगते हैं। इस एकतरफा प्रतिस्पर्धा में कभी-कभी तो विकासशील देशों का पूरा कृषि क्षेत्र ही बर्बाद हो जाता है। ऐसे कार्यक्रमों से कृषि उत्पाद में व्यापार करने वाली कम्पनियों को काफी लाभ पहुंचता है क्योंकि इन कार्यक्रमों में अगर व्यापार के दौरान कोई जोखिम उत्पन्न होता है तो उसे सरकार और कर दाता के ऊपर डाल दिया जाता है। कारगिल, कॉनआगरा, आर्चर डेनियल्स मिडलैण्ड, बंज लिमिटेड और स्मिथफिल्ड जैसी पश्चिमी कृषि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने निर्यात सब्सिडी के प्रावधानों का विश्व कृषि व्यापार पर कब्जा करने के लिए सबसे ज्यादा फायदा उठाया है। WTO की तरफ से संचालन (हैंडलिंग), भण्डारण, परिवहन, प्रसंस्करण, उन्नयन और निर्यात विज्ञापन के लिए अनुमति है जिसकी वजह से कारगिल⁵⁰ जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को (जिनके नियन्त्रण में विश्व का 70 प्रतिशत अनाज व्यापार है) इससे सबसे ज्यादा लाभ पहुंचता है। घरेलू समर्थन और निर्यात सब्सिडी की मदद से ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपने सस्ते और अत्यधिक सब्सिडी वाले उत्पादों से विश्व बाजार को भर देते हैं जिससे न सिर्फ उनके अन्तर्राष्ट्रीय दाम गिर जाते हैं बल्कि विकासशील देशों में घरेलू कीमतें भी गिर जाती हैं। भारत जैसे विकासशील देशों में इसके विनाशकारी प्रभाव आसानी से देखे जा सकते हैं। घरेलू कीमतों में गिरावट के कारण हजारों छोटे और सीमान्त किसानों को आत्महत्या का रास्ता चुनना पड़ा। कृषि से किसानों का मूल धन भी वापस नहीं आ रहा था, लाभ की बात तो छोड़ ही दें।

यही नहीं, ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां न सिर्फ पश्चिमी देशों की सब्सिडी का फायदा उठा रही हैं बल्कि वे विकासशील देशों में मिलने वाली सब्सिडी की छूट को भी हथिया लेती हैं। वर्ष 2001 में भारत ने 20,000 टन गेहूं फिलिपींस को बीपीएल (BPL) कीमत पर निर्यात किया, जिसका आर्डर अमेरिका की कारगिल कम्पनी को दिया गया। भारतीय खाद्य निगम को इसकी कीमत 8300 रुपये प्रति टन पड़ी जबकि खुले बाजार में

⁵⁰ कारगिल, विश्व का सबसे बड़ा अनाज व्यापारी है जो पूरे उत्तरी अमेरिका, यूरोप, और एशिया के करीब 50 देशों के खरीद, प्रसंस्करण, परिवहन, भण्डारण, निर्यात और व्यापार गतिविधियों को नियंत्रित करता है।

इसकी कीमत 7000 रुपये प्रति टन थी। लेकिन इसे कारगिल को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में 4300 रुपये प्रति टन में बेचा गया। ज्ञात रहे कारगिल इतनी बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनी है कि इसके पास कई विकासशील देशों से भी ज्यादा पूंजी है। यही नहीं कारगिल को इसके अलावा भी सब्सिडी दी गई। भारत सरकार ने राजपुरा से जामनगर बन्दरगाह (गुजरात) तक का खर्चा भी खुद उठाया और कारगिल को ऊपर से कमीशन भी दिया। इस प्रकार गेहूँ, जिसका खर्च सरकार को न्यूनतम समर्थन मूल्य (वर्ष 2000 में 580 रुपये), कमीशन, बाजार शुल्क, लेवी, चुंगी इत्यादि के कारण करीब 70 रुपये प्रति क्विंटल बढ़ गया था, उसे कारगिल को 420 रुपए प्रति क्विंटल में बेचा गया। अंदाज़न, कारगिल को करीब 130 रुपए प्रति क्विंटल की सब्सिडी का मुनाफा मिला।

निर्यात सब्सिडी को खत्म करना विकासशील देशों के स्थानीय उत्पादक और स्थानीय निर्यातकों के लिए काफी महत्वपूर्ण है जो अमेरिका और यूरोपीय संघ की कंपनियों से प्रतिस्पर्धा कर पाने में सक्षम नहीं हैं। दुर्भाग्यवश, इस विसंगति को दूर करने के लिए विकासशील देशों के सारे प्रयास धरे रह गए। इसके विपरीत 'अमेरिका फॉर्म बिल 2014' जैसे कानूनों से यह और भी पक्का हो गया है कि निर्यात सब्सिडी में कोई कटौती नहीं की जाएगी।

अब यह किसी से छिपा नहीं है कि कपास के क्षेत्र में अमेरिका की सब्सिडी के कारण चाड, बेनिन, बुर्किना फासो और माली के कपास की खेती करने वाले किसान तबाह हो चुके हैं। भारत के कपास उत्पादकों की बदहाली के पीछे भी अमेरिका की सब्सिडी का ही हाथ है। वर्ष 2002 से 2006 के बीच विदर्भ (महाराष्ट्र) के कई कपास उत्पादकों ने अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों में उतार-चढ़ाव के कारण आत्महत्या कर ली। भारत के कपास उत्पादकों को घरेलू बाजार में बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से मुकाबला करना पड़ रहा था। इन विदेशी कम्पनियों के लिए बाजार पर कब्जा करना बाएं हाथ का खेल था, क्योंकि एक तरफ तो आयात प्रशुल्क काफी कम थे और दूसरी तरफ अत्यधिक सब्सिडी के कारण इनके कपास के दाम गिरे हुए थे। ऐसे में हमारे किसानों के पास कोई विकल्प नहीं था।

अमेरिका ने WTO की 'विवाद निपटान निकाय' के मार्च 2005 के आदेश की भी अवमानना की है। इस आदेश में कहा गया था कि सितम्बर 2005 तक अमेरिका में कपास उत्पादकों को दिए जा रहे निर्यात सब्सिडी समेत सभी सब्सिडी को वापस ले लिया जाए। इस 'निकाय' ने इस बात की भी पुष्टि की थी कि अमेरिका ने वर्ष 1999 से 2002 के बीच 12.5 बिलियन (1250 करोड़) अमरीकी डॉलर की सब्सिडी अपने कपास उत्पादकों को दी थी, जिसके कारण कपास की कीमतें काफी गिर गई थीं। ब्राजील और अफ्रीका के कपास किसान इससे बुरी तरह से प्रभावित हुए थे। इसी प्रकार WTO ने यूरोपीय संघ द्वारा दी जा रही चीनी के लिए निर्यात सब्सिडी को भी अवैध ठहराया था और उसे हटाने के आदेश भी दिए थे। फिर भी कुछ नहीं हुआ।

विकसित देशों की इन विकृतियों से निपटने में WTO पूरी तरह से नाकाम रहा है। ब्राजील ने अगस्त 2009 में अमेरिका के खिलाफ कपास सब्सिडी का केस जीत लिया था। ब्राजील अमेरिका के ऊपर 820 मिलियन अमेरिकी डॉलर का जुर्माना लगा सकता था पर अमेरिका का इतना दबदबा है कि ब्राजील ने ऐसा कुछ नहीं किया। अन्त में उसे अपने कपास उत्पादकों के लिए मात्र 147.3 मिलियन डॉलर सालाना सब्सिडी अमेरिका से स्वीकार कर सन्तोश करना पड़ा। इस प्रकार ब्राजील को अमेरिका की कपास सब्सिडी को खत्म करने का मौका तो मिला पर उसका कोई फायदा नहीं हुआ।

निर्यात प्रतिस्पर्धा चार प्रमुख मुद्दों को सम्बोधित करती है, जिसमें निर्यात सब्सिडी के अलावा, खाद्य सहायता, राज्य व्यापार उद्यम और निर्यात क्रेडिट शामिल हैं। वर्ष 2005 के हांगकांग मंत्रिस्तरीय बैठक में यह तय हुआ था कि विकसित देश वर्ष 2013 तक सभी प्रकार के निर्यात सब्सिडी को खत्म कर देंगे, जैसे :

- सीधी सब्सिडी, जिसमें निर्यात प्रदर्शन के आधार पर वस्तुओं के रूप में भुगतान किया जाता है
- सरकार या उसकी संस्थाओं द्वारा घरेलू बाजार मूल्य से कम दामों पर गैर-वाणिज्यिक भण्डार की बिक्री
- सरकारी क्रिया (जैसे लेवी) की मदद से भुगतान, भले ही उसका असर सार्वजनिक खाता पर पड़े या न पड़े
- निर्यात खर्च की कटौती के लिए सब्सिडी (विज्ञापन और सलाहकार सेवाओं के अलावा)
- निर्यात के लिए आन्तरिक परिवहन सब्सिडी जो घरेलू मालवहन से ज्यादा अनुकूल हो
- निर्यात किए गए उत्पादों के समावेश के लिए कृषि उत्पादों पर सब्सिडी

विकासशील देशों के लिए यह छूट है कि वे निर्यात विपणन खर्च, देशीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिवहन, माल का भाड़ा, इत्यादि पर सब्सिडी दे सकते हैं, पर यह छूट इन्हें वर्ष 2021 तक दी गई है। दिसम्बर 2008 के प्रारूप में निर्यात सब्सिडी प्रतिबद्धता को धीरे-धीरे खत्म करने की बात की गई थी। फिर भी वर्ष 2013 के बाली मंत्रिस्तरीय बैठक में निर्यात सब्सिडी खत्म करने को लेकर कोई निर्णय नहीं लिया जा सका। एक बार फिर से सदस्यों ने कहा कि वे धीरे-धीरे सभी प्रकार की निर्यात सब्सिडी को खत्म करने की कोशिश करेंगे।

विकासशील देशों ने हमेशा यह माना है कि विकसित देश अपने घरेलू समर्थन को निर्यात सब्सिडी की तरह इस्तेमाल करते हैं। उन्होंने विकसित देशों के ऊपर हमेशा यह आरोप लगाया है कि उनके घरेलू समर्थन का कृषि उत्पादों के व्यापार पर विकृत करने वाला प्रभाव पड़ता है। इन्हें निर्यात सब्सिडी से अलग करके देखना नामुमकिन है। बाली मंत्रिस्तरीय बैठक में कुछ भी हासिल नहीं हुआ पर उसके बाद की बैठकों से यह पता चलता है सभी सदस्य देश 2015 तक अंतिम निर्णय ले लेना चाहते हैं।

WTO में खाद्य सुरक्षा एवं भण्डारण का मुद्दा

पिछले भाग में हमने हरा बॉक्स सब्सिडी और सार्वजनिक खाद्य भण्डारण (Public Stockholding) के बारे में पढ़ा। आइये, सार्वजनिक खाद्य भण्डारण के बारे में और गहराई से जानते हैं। खाद्य भण्डारण का सरल अर्थ है – खाद्य सुरक्षा के लिए सरकार द्वारा किया गया भोजन का भण्डारण। भारत में 'जन वितरण प्रणाली' के अन्तर्गत सरकार किसानों से अनाज खरीदकर भण्डारण करती है। विकसित देश इसका यह कहकर विरोध कर रहे हैं कि अगर भारत के पास इतना बड़ा भण्डार रहेगा तो वह कभी भी अंतर्राष्ट्रीय बाजार और व्यापार को विकृत कर सकता है। हमारा तर्क यह है कि गरीबों की भूख मिटाने के लिए खाद्य भण्डारण भारत का अधिकार है।

खाद्य भण्डारण के मुद्दे पर WTO में पिछले 4 वर्षों से गहन बहस चल रही है। भारत और अन्य विकासशील देशों में खाद्य सुरक्षा के लिए सरकारी खरीद और खाद्य भण्डारण काफी महत्वपूर्ण है। यह न सिर्फ करोड़ों शहरी और ग्रामीण गरीबों को सस्ता भोजन सुनिश्चित करता है बल्कि यह छोटे और संसाधनहीन किसानों को मूल्य समर्थन की गारन्टी भी देता है। परन्तु खाद्य भण्डारण व्यवस्था के ऊपर विकसित देश लगातार आघात कर रहे हैं।

हरे बॉक्स के नियमों के अनुसार खाद्य सुरक्षा के लिए किए गए सार्वजनिक खाद्य भण्डारण पर कोई पाबन्दी नहीं है। विकसित और विकासशील, दोनों ही देश सरकारी भण्डार रख सकते हैं। परन्तु शर्त यह है कि सरकार को बाजार की मौजूदा कीमत पर ही अनाज खरीदना होगा, और अगर सार्वजनिक भण्डारण से अनाज बेचना हो तो वह भी मौजूदा घरेलू बाजार की कीमत पर ही बेचना होगा। **अगर अनाज को बाजार के मूल्य के बजाए सरकार द्वारा तय कीमत पर अर्जित किया जाए, जिसे 'समर्थन' या 'निर्धारित' कीमत (या भारत में 'न्यूनतम समर्थन मूल्य') कहेंगे, तो इसे सब्सिडी माना जाएगा।** हरे बॉक्स के नियमों के अनुसार खाद्य भण्डारण कार्यक्रम के लिए जितनी मात्रा में सरकारी कीमत पर (न कि बाजार की कीमत पर) समर्थन दिया गया है, उसे व्यापार विकृत करने वाली घरेलू सब्सिडी माना जायेगा।

पिछले भाग में हमने देखा कि करीब 101 देशों ने, जिनमें अधिकतर विकासशील देश शामिल हैं, अपने AMS को शून्य बताया था। इन देशों के पास, जिसमें भारत भी शामिल है, डि मिनिमिस स्तर (10 प्रतिशत) से ज्यादा समर्थन देने का अधिकार नहीं है।

WTO में बाजार मूल्य समर्थन के आंकलन के तरीके से विकासशील देशों को आपत्ति है। इसके कारण उत्पादन मूल्य के 10 प्रतिशत सीमा के अन्दर रहना काफी कठिन हो जाता है। पिछले भाग में हमने यह भी देखा कि समर्थन का आंकलन⁵¹ घरेलू बाजार कीमत और बाहरी सन्दर्भ मूल्य (external reference price) के बीच के अन्तर को उत्पादन की मात्रा (जो सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य के लिए योग्य है) के साथ गुणा करके प्राप्त किया जाता है। उदाहरण के लिए, भारत में गेहूँ का सरकारी मूल्य⁵² (न्यूनतम समर्थन मूल्य) वर्ष

⁵¹ घरेलू समर्थन (AMS) के आंकलन के बारे में कृषि समझौते (AoA) के अनुलग्न 3, परिच्छेद 8 में दिया गया है। https://www.wto.org/english/docs_e/legal_e/14-ag_02_e.htm#annIII7

⁵² <http://pib.nic.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=110936>

2014–2015 में 14.50 रुपये प्रति किलो था और इसका बाहरी सन्दर्भ मूल्य (जो 1986–88 के गेहूं के भाव के अनुसार) 3.54 रुपये प्रति किलो⁵³ था। ऐसे में WTO के नियमों के अनुसार, गेहूं की सब्सिडी होती है $(14.50-3.54) = 10.96$ रुपये प्रति किलो। इसी प्रकार वर्ष 2014–2015 में, चावल (ग्रेड A) का न्यूनतम समर्थन मूल्य⁵⁴ 21.00 रुपये प्रति किलो था। यह धान की न्यूनतम समर्थन मूल्य से 1.5 गुणा ज्यादा था। चावल का बाहरी सन्दर्भ मूल्य (जो 1986–88 के गेहूं के भाव के अनुसार) 3.52 रुपये प्रति किलो⁵⁵ था। इस प्रकार चावल की सब्सिडी होती है $(21.00-3.52) = 17.48$ रुपये प्रति किलो। गेहूं और चावल में प्रति किलो दी जाने वाली सब्सिडी को उस साल की गेहूं या चावल के कुल उत्पादन की मात्रा के साथ गुणा कर दिया जाता है। यह तरीका बिलकुल गलत है क्योंकि इसमें समर्थन के लिए खरीदी गई मात्रा के बजाए उस समय की कुल उत्पादन की मात्रा के साथ गुणा किया जाता है। ऐसे में सरकारी कार्यक्रम द्वारा दी जा रही सब्सिडी की मात्रा काफी बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में भारत जैसे विकासशील देशों के लिए अपने समर्थन कार्यक्रम को डि मिनिमिस स्तर के नीचे रखकर चलाना बहुत मुश्किल हो जाता है।

आंकलन के इस तरीके में दो दिक्कतें हैं। पहली, यह 30 साल पुराने (वर्ष 1986–88) बाजार मूल्य से जुड़ा हुआ है; और दूसरी, इसका आंकलन सरकार द्वारा खरीदी गई मात्रा पर नहीं बल्कि समर्थन योग्य सम्पूर्ण उत्पादन पर होता है। अर्थात् यदि भारत सरकार अपने समर्थन कार्यक्रम के लिए बहुत थोड़ी मात्रा में अनाज खरीदती है, तो भी उसके समर्थन का हिसाब ऐसे किया जाएगा जैसे सरकार ने उस फसल के सम्पूर्ण उत्पादन को समर्थन मूल्य देकर खरीदा हो। इन कारणों से समर्थन का स्तर वास्तविकता के मुकाबले काफी ज्यादा दिखता है।

इससे विकासशील देशों को खाद्य सहायता या सार्वजनिक भण्डारण कार्यक्रमों को 10 प्रतिशत की सीमा के अन्दर रखना काफी मुश्किल हो जाता है। दिसम्बर 2008 के प्रारूप में इसे बदलने की कोशिश की गई पर कोई सहमति नहीं बन पाई है और यह मुद्दा अनसुलझा ही रह गया।

WTO के एकतरफा नियमों को भारत की चुनौती

भारत जैसे विकासशील देश कृषि समझौते के एकतरफा नियमों से पीड़ित हैं। इन नियमों की वजह से आज भी विकसित देश व्यापार विकृत करने वाली सब्सिडी को बरकरार रखे हुए हैं और दूसरी तरफ वे विकासशील देशों की कृषि और खाद्य नीति को प्रभावित कर उनकी सम्प्रभुता को चोट पहुंचा रहे हैं। विश्व के एक-तिहाई भूखे लोग भारत में रहते हैं। लेकिन फिर भी भारत अपने 'राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून 2013' के तहत खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम को पूरी तरह लागू करने से डर रहा है। इस कार्यक्रम में करीब दो-तिहाई जनसंख्या को अनाज वितरित करने का प्रावधान है, जिसके लिए 20 बिलियन डॉलर (करीब 120 हजार करोड़ रु.) की लागत आयेगी। भारत का डर है कि इससे उसका डि मिनिमिस (10 प्रतिशत) सीमा का उल्लंघन हो सकता है। इस प्रकार WTO के नियम भारत को खाद्य सुरक्षा कानून को पूरी तरह से लागू करने से रोकते हैं। वर्ष 2012 में भारत ने जी-33 के जरिए एक प्रस्ताव रखा जिसमें हरे बॉक्स नियमों को और लचीला बनाने को

⁵³ <http://www.jgls.edu.in/citel/pdf/services/menon.pdf>

⁵⁴ <http://pib.nic.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=122585>

⁵⁵ *ibid*

कहा गया। इस प्रस्ताव के अनुसार विकासशील देशों द्वारा 'निम्न-आय संसाधनहीन उत्पादकों' के लिए किए गए खाद्य भण्डारण को AMS में शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

भारत का उद्देश्य खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए घरेलू समर्थन नियमों में बदलाव लाने का था। अगर ऐसा हो जाता है तो भारत निम्न-आय संसाधनहीन उत्पादकों⁵⁶ से न्यूनतम समर्थन मूल्य पर गेहूं-चावल खरीदना जारी रख सकता है। भारत के कुछ राज्यों के किसानों की एक बड़ी आबादी सरकारी खरीद कार्यक्रम के कारण बची हुई है क्योंकि हर साल उनका उत्पादन खासकर गेहूं या चावल को न्यूनतम समर्थन मूल्य पर सरकार खरीद लेती है। भारत के इस प्रस्ताव से बड़े अनाज निर्यातक देश जैसे अमेरिका, यूरोपीय संघ, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया व अन्य देश सहमत नहीं हैं। उनका यह मानना है कि यह व्यापार को विकृत करने वाला समर्थन है क्योंकि इसमें उत्पादकों को सीधे मूल्य समर्थन दिया जा रहा है। दूसरा, अगर अनाज को बाजार मूल्य पर खरीदा जाए तो इससे व्यापार विकृत करने वाला नहीं माना जाएगा, पर यहां इसे बाजार मूल्य के बजाय सरकारी मूल्य (न्यूनतम समर्थन मूल्य) पर खरीदा जा रहा है।

विकसित देशों के विरोध के पीछे की सच्चाई कुछ और है। वे अपने अनाज को विकासशील देशों के बाजार में बेचना चाहते हैं। अगर विकासशील देश खाद्य भण्डारण और वितरण करने लगेंगे तो इनसे अनाज कौन खरीदेगा। विकसित देशों के लिए प्रतिबन्धित कृषि मूल्य व्यवस्था के कई फायदे हैं :

1. प्रतिबन्धित न्यूनतम समर्थन मूल्य के होने से बहुराष्ट्रीय कम्पनियां (जैसे ग्लेंकोर (Glencore), टोयफर (Toepfer), कारगिल (Cargill) और ऑस्ट्रेलियन वीट बोर्ड) न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम कीमत पर उत्पाद खरीद सकती हैं।
2. प्रतिबन्धित न्यूनतम समर्थन मूल्य होने से राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून के तहत अनाज की सरकारी खरीद कमजोर पड़ जाएगी जिससे इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों को इस कमी को पूरा करने का एक सुनहरा मौका मिलेगा।

खुद अमेरिका के 'खाद्य टिकट'⁵⁷ (food stamps) के खर्च तेजी से बढ़े हैं। अमेरिका की कृषि सब्सिडी वर्ष 2010 में 130.3 बिलियन (या 13030 करोड़) डॉलर थी, जो अब तक की सबसे ज्यादा सब्सिडी थी। इसमें से 120.5 बिलियन (या 12050 करोड़) डॉलर को अमेरिका ने हरे बॉक्स भुगतान के रूप में दिखाया है। अमेरिकी सरकार के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2010 में अमेरिका के कुल हरे बॉक्स खर्च⁵⁸ का 80 प्रतिशत हिस्सा (94.9 बिलियन या 949 करोड़ डॉलर) घरेलू खाद्य सहायता कार्यक्रम के लिए किया गया था, जिसमें खाद्य टिकट भी शामिल है।

वर्ष 2009-10 में खाद्य सुरक्षा के तहत सार्वजनिक भण्डारण के लिए भारत की सब्सिडी करीब 1230 करोड़ डॉलर थी। उसी साल की अमेरिका की सब्सिडी भारत से 8 गुना ज्यादा थी। अमेरिका में 8 करोड़ लाभार्थी हैं, जबकि भारत में उससे 6 गुना ज्यादा (47.5 करोड़) लाभार्थी हैं।⁵⁹ भारत के 'खाद्य सुरक्षा कानून 2013' का

⁵⁶ 'निम्न-आय संसाधनहीन उत्पादकों' की श्रेणी में भारत के करीब 98.97 प्रतिशत किसान आते हैं जिनके पास 10 हेक्टेयर से कम भूमि है

⁵⁷ 'फुड स्टॉप' (Food Stamp) या खाद्य टिकट अमेरिका का एक भोजन-क्रय सहायता कार्यक्रम है जिसके तहत अमेरिका के निम्न या बिना आय वाले लोगों को खाद्य टिकट बांटे जाते हैं जिन्हें देकर वे भोजन प्राप्त कर सकते हैं।

⁵⁸ <http://ictsd.org/i/news/bridgesweekly/146491/>

⁵⁹ http://www.wto.org/english/news_e/news13_e/pfor_03oct13_e.htm

दायरा⁶⁰ कहीं ज्यादा बड़ा है और यह भारत की दो-तिहाई जनसंख्या (82 करोड़)को भोजन के अधिकार की गारंटी देता है; यह अमेरिका से 10 गुना ज्यादा बड़ा है। WTO के दोहरे मानदण्डों का पता इससे भी चलता है कि वर्ष 2010 में भारत प्रत्येक किसान को औसतन 4600 रुपये (99 डॉलर) का समर्थन दे रहा था जबकि अमेरिका, वर्ष 2012 में, अपने प्रत्येक किसान को औसतन करीब 27 लाख रुपये (57,901 डॉलर) की सब्सिडी⁶¹ दे रहा था। यह भारत की सब्सिडी से 585 गुना ज्यादा है। फिर भी अमेरिका लगातार भारत पर यह दबाव बनाये हुए है कि वह अपने लघु व सीमान्त किसानों के समर्थन देना बंद करे।

बाली मंत्रिस्तरीय वार्ता (2013) में खाद्य भण्डारण का मुद्दा

दिसम्बर 2013 में हुई बाली मंत्रिस्तरीय वार्ता में दो प्रमुख मुद्दे थे—(i) खाद्य सुरक्षा के लिए खाद्य भण्डारण का स्थाई समाधान; और (ii) व्यापार सुगमता, जिसका उद्देश्य सीमा शुल्क प्रक्रियाओं को सरल और पारदर्शी बनाना, इलेक्ट्रॉनिक भुगतान और जोखिम प्रबन्धन तकनीकों का इस्तेमाल। परन्तु भारत और विकासशील देश तब तक 'व्यापार सुगमता करार' के लिए तैयार नहीं थे जब तक खाद्य भण्डारण के मुद्दे पर कोई स्थाई समाधान नहीं निकल जाता। इस प्रकार बाली में 'मुक्त व्यापार' बनाम 'खाद्य सुरक्षा' के बीच काफी बहस हुई।

अक्टूबर 2013 में, भारत के नेतृत्व में विकासशील देशों ने 'खाद्य सुरक्षा के लिए सार्वजनिक खाद्य भण्डारण और कृषि सब्सिडी' से सम्बन्धित एक और प्रस्ताव जमा किया। इस प्रस्ताव के अनुसार बाली मंत्रिस्तरीय वार्ता में तीन विकल्पों के ऊपर बातचीत होनी थी :

विकल्प (क) — 'बाहरी संदर्भ मूल्य' की पुनः व्याख्या;

विकल्प (ख) — कृषि समझौते के अनुच्छेद 18.4 में इस्तेमाल किए गए शब्दों की व्याख्या; जैसे 'अत्यधिक मुद्रास्फीति';

विकल्प (ग) — शान्ति अनुच्छेद

भारत की मांग थी कि बाहरी सन्दर्भ मूल्य को मौजूदा कीमत के अनुसार ढाला जाए। इतना पुराना होने के कारण यह मौजूदा कीमत से बहुत ज्यादा कम है। अमेरिका के नेतृत्व में विकसित देशों ने इसे मानने से इंकार कर दिया। उनका कहना था कि कृषि समझौते के किसी भी हिस्से पर वे फिर से बहस नहीं करना चाहते हैं। विकसित देशों ने दूसरे विकल्प का भी जोरदार विरोध किया, जिसमें बाहरी सन्दर्भ मूल्य में मुद्रास्फीति को भी संज्ञान में लेने की बात की गई थी। वर्ष 1986-88 की तुलना में भारत की मुद्रास्फीति दर 675 प्रतिशत से भी ज्यादा हो गई है। कृषि समझौते के अनुच्छेद 18.4 में 'अत्यधिक मुद्रास्फीति दर' के ऊपर विचार करने का प्रावधान है। परन्तु, बहस इस बात पर अटक गई कि 'अत्यधिक' मुद्रास्फीति की पहचान कैसे की जाए। तीसरे विकल्प, शान्ति अनुच्छेद का उद्देश्य था कि 'सार्वजनिक खाद्य भण्डारण' कार्यक्रम को WTO के विवाद निपटान व्यवस्था से बाहर रखा जाए।

⁶⁰ http://zeenews.india.com/news/nation/rajya-sabha-passes-national-food-security-bill-by-voice-vote_873721.html

⁶¹ http://www.southcentre.int/wp-content/uploads/2015/03/Ev_150312_AKwa.pdf

सशर्त शांति अनुच्छेद (Conditional Peace Clause)

बाली में विकसित देशों के कड़े विरोध के कारण, अंततः भारत को अस्थाई व अन्तरिम 'शांति अनुच्छेद' को स्वीकार करना पड़ा। शांति अनुच्छेद के तहत सदस्य देश WTO में एक दूसरे के खिलाफ मामला दर्ज नहीं करेंगे। इसके अलावा WTO के मूल नियमों में कोई बदलाव नहीं होगा। त्रुटिपूर्ण और एकतरफा नियमों को बदलने के बजाए WTO सदस्य 'शांति अनुच्छेद' पर सहमत हो गए। इसके अनुसार भारत या किसी भी अन्य विकासशील देश के खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं होगी। इस अस्थाई समाधान के बदले अमेरिका ने विकासशील देशों से 'व्यापार सुगमता करार' (TFA) को पास करवा लिया।

शांति अनुच्छेद का प्रावधान सिर्फ 4 वर्षों के लिए है (या 11वीं मंत्रिस्तरीय बैठक तक) जिसके बाद यह अपने आप खत्म हो जाएगा। यह किसी भी स्थाई समाधान की कोई गारंटी नहीं देता। इसके अलावा भी इसमें कई जटिल शर्तें शामिल हैं :

- **शांति अनुच्छेद केवल कृषि समझौते के लिए लागू होगा :** 'सब्सिडी और काउंटरवेलिंग उपायों पर समझौता' (Agreement on Subsidies and Countervailing Measure) को इससे बाहर रखा गया है जो दूसरे सदस्यों के ऊपर बुरे प्रभाव डालने वाली सब्सिडी को प्रतिबन्धित करता है। भारत भी इसके दायरे में आता है।
- **यह अस्थाई व अंतरिम समाधान केवल मौजूदा कार्यक्रमों तक ही सीमित रहेगा :** इस प्रकार यह सरकार को अपने कार्यक्रमों के विस्तार से रोकता है। अर्थात् किसानों के समर्थन मूल्य में कोई वृद्धि नहीं होगी; खाद्य सुरक्षा के लिए सार्वजनिक भण्डारण में कोई नई फसल नहीं जोड़ सकेंगे; न्यूनतम समर्थन मूल्य के लिए भी नई फसलों को नहीं जोड़ सकेंगे। इसका अर्थ यह भी निकलता है कि जिन देशों में खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम नहीं है वे अब इनकी शुरुआत नहीं कर सकेंगे।
- **यह केवल पारम्परिक प्रधान खाद्य फसल के ऊपर ही लागू होगा :** अतः दालें, खाद्य तेल और जो फसलें WTO की 'पारम्परिक प्रधान भोजन' की सूची में शामिल नहीं है, वे इसमें शामिल नहीं हो सकेंगी।
- **इस समझौते की व्यापार प्रोत्साहन सम्बद्ध शर्तें :** जैसे सदस्य देशों को यह सुनिश्चित करना होगा कि खाद्य सुरक्षा के लिए किए गए भण्डारण से व्यापार विकृत न हो रहा हो और किसी अन्य सदस्य देश की खाद्य सुरक्षा पर बुरा प्रभाव न पड़ रहा हो। यह शर्त बहुत ही व्यापक है और किसी भी बड़े घरेलू कार्यक्रम के ऊपर व्यापार विकृत करने का आरोप लगाया जा सकता है।
- **अधिसूचना और पारदर्शिता की जटिल आवश्यकताएं :** सदस्य देशों को इसका लाभ उठाने के लिए अपने घरेलू समर्थन की अधिसूचना को वार्षिक स्तर पर जमा करनी होगी। प्रत्येक सार्वजनिक खाद्य भण्डारण कार्यक्रमों के लिए अलग से जानकारी तैयार करना होगा। ज्यादातर विकासशील देशों को इन जटिल आंकड़ों को जमा करने में काफी दिक्कतों को सामना करना पड़ता है। साथ ही ऐसा करने से वे अपनी घरेलू नीतियों व कार्यक्रमों को अन्तर्राष्ट्रीय समीक्षा के लिए खोल देंगे।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि WTO ऐसे में अपने सदस्य देशों (स्पष्ट रूप से विकासशील देशों) के नीति निर्माण क्षेत्र में हस्तक्षेप करता है जो सीधे-सीधे राष्ट्रीय सम्प्रभुता से जुड़ा हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए WTO सरकारों से खाद्य सुरक्षा देने के अधिकार तक को छीन रहा है। राष्ट्रीय सम्प्रभुता की तुलना में वैश्विक व्यापार को ज्यादा प्राथमिकता दी जा रही है।

बाली मंत्रिस्तरीय बैठक के बाद के घटनाक्रम

बाली वार्ता के बाद भी WTO में खाद्य सुरक्षा के मुद्दे पर कुछ नहीं बदला। जुलाई 2014 में भारत ने यह तय किया कि जब तक खाद्य सुरक्षा के लिए सार्वजनिक खाद्य भण्डारण के मुद्दे को सम्बोधित नहीं किया जाता तब तक भारत 'व्यापार सुगमता करार' के क्रियान्वयन में शामिल नहीं होगा।

इस स्थिति से निपटने के लिए अमेरिका और भारत के बीच नया समझौता हुआ जिसे WTO की जनरल काउन्सिल ने नवम्बर 2014 को औपचारिक रूप से स्वीकार भी कर लिया। इस समझौते के अनुसार अब 'शांति अनुच्छेद' तब तक कायम रहेगा जब तक कोई स्थाई समाधान न निकल आए। इस तरह बिना किसी रुकावट के भारत अपने न्यूनतम समर्थन मूल्य कार्यक्रम को जारी रख सकता है। यह फैसला भारत के साथ-साथ बांग्लादेश, मिस्र, घाना, इण्डोनेशिया, जॉर्डन, कीनिया, मोरक्को, नेपाल, पाकिस्तान, तुनिसिया, तुर्की, जाम्बिया, और जिम्बाबवे जैसे देशों के लिए भी बहुत बड़ी राहत थी। जनरल काउन्सिल में यह भी तय किया गया कि 31 दिसम्बर 2015 तक स्थाई समाधान ढूँढ़ने के सभी प्रयास किये जाएंगे। इससे इस प्रक्रिया में एक तात्कालिकता का भाव आ गया।

सार्वजनिक खाद्य भण्डारण के लिए स्थाई समाधान निम्नलिखित में से एक हो सकते थे : 1. बाहरी सन्दर्भ मूल्य को 3 साल के औसत के आधार पर तय किया जाए; 2. बाहरी सन्दर्भ मूल्य में मुद्रास्फीति को भी समायोजित किया जाए; और 3. सार्वजनिक खाद्य भण्डारण कार्यक्रम पर सब्सिडी या न्यूनतम समर्थन मूल्य को हरे बॉक्स में डाला जाए। तीसरे विकल्प के ऊपर जी-33 समूह ज्यादा जोर डाल रहे थे क्योंकि पहले और दूसरे विकल्प से सभी विकासशील देशों की समस्याओं का हल नहीं निकल रहा था। वर्ष 2015 में जी-33 समूह ने दुबारा अपने इस प्रस्ताव पर जोर डाला कि सार्वजनिक खाद्य भण्डारण कार्यक्रम को हरे बॉक्स में डाला जाना चाहिए।

भारत और अमेरिका के समझौते के बाद जब 'व्यापार सुगमता करार' पर सहमति बन गई तो एक बार फिर से खाद्य भण्डारण के मुद्दे को ठण्डे बक्से में डाल दिया गया। इस मुद्दे पर स्थाई समाधान ढूँढ़ने के बजाए विकसित देशों ने दूसरे 'नए' मुद्दे उठाने शुरू कर दिए। मानो सभी पुराने मुद्दों (सब्सिडी कटौती, विशेष एवं विभिन्न उपाय, विशेष उत्पाद और खाद्य सुरक्षा) की प्रासंगिकता ही खत्म हो गई हो। ये विकसित देश अपने 2008 के पुराने तर्क पर वापस चले गए कि विकासशील देशों को 'विशेष व विभिन्न व्यवहार' नहीं दिया जाना चाहिए। यहां तक कि अमेरिका ने भी भारत पर यह आरोप भी लगा दिया कि वह अनुच्छेद 6.2 के तहत जरूरत से ज्यादा इनपुट सब्सिडी दे रहा है। भारत के ऊपर सार्वजनिक खाद्य भण्डारण को खत्म करने के लिए लगातार दबाव डालना अमेरिका की कूटनीति का हिस्सा बन चुका था।

वर्ष 2015 में होने वाली नैरोबी मंत्रिस्तरीय बैठक से पहले विकसित देशों ने खाद्य सुरक्षा के लिए स्थाई

समाधान प्रस्ताव के ऊपर बातचीत करना बंद कर दिया था।

खाद्य सुरक्षा के लिए सार्वजनिक खाद्य भण्डारण केवल भारत का मुद्दा नहीं है। अफ्रीकी देशों सहित कई बड़े विकासशील देश इस समस्या से जुझ रहे हैं। खाद्य कीमतें लगातार बढ़ती जा रही हैं और इसलिए गरीबों को भोजन मुहैया करवाने के लिए बनाई गई नीति को किसी अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के कारण रोकना नहीं चाहिए।

सिर्फ भारत ही नहीं बल्कि कई विकासशील देश अपने खाद्य भण्डारण कार्यक्रम के कारण डि मिनिमिस (10 प्रतिशत) सीमा के उल्लंघन के कगार पर हैं। जब तक WTO में कोई स्थाई समाधान नहीं निकल जाता तब तक दुनियाभर के खाद्य सुरक्षा कार्यक्रमों के ऊपर खतरे मंडराते रहेंगे। इसलिए सभी देशों को एक साथ मिलकर सभी के लिए खाद्य भण्डारण कार्यक्रम को हरे बॉक्स में डाले जाने की मांग करनी चाहिए।

खाद्य सुरक्षा के मुद्दे पर भारत की द्विअर्थी नीति

जहां तक खाद्य सुरक्षा की बात है यह जानना महत्वपूर्ण होगा कि भारत WTO में अलग और देश के अन्दर अलग भाषा का प्रयोग करता है। WTO के अन्दर भारत सरकार का तेवर भारतीय किसान के हितों को सुरक्षित करने का रहता है। पर यह भ्रमित करने वाला है, क्योंकि घरेलू स्तर पर हमारी सरकार विरोधात्मक कार्य कर रही है, जैसे कृषि सब्सिडी में कटौती, खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम के दायरे को कम करना, सार्वजनिक खाद्य भण्डारण कार्यक्रम को खत्म करना और किसानों के लिए मूल्य समर्थन को वापस लेने की तैयारी इत्यादि। 12 जून 2014 को भारत सरकार के उपभोक्ता मामला मंत्रालय ने सभी राज्य सरकारों को यह आदेश जारी किया कि गेंहू और धान की खरीद में न्यूनतम समर्थन मूल्य के ऊपर कोई बोनस न दिया जाए। इसके पीछे यह कारण बताया गया कि इससे 'व्यापार विकृत होता है' और इससे 'प्राइवेट खरीददार बाजार से बाहर हो जाएंगे'। किसानों को उत्पादन खर्च के ऊपर 50 प्रतिशत अतिरिक्त लाभ देने के अपने चुनावी वायदे से न सिर्फ सरकार पीछे हट रही है बल्कि वह भारतीय खाद्य निगम (FCI) के पूर्णगठन के नाम पर पूरे सरकारी खरीद के ढांचे को कमजोर भी कर रही है।

नैरोबी मंत्रिस्तरीय बैठक से विकासशील देश खाली हाथ लौटे

WTO का 10वां मंत्रिस्तरीय सम्मेलन (MC10) नैरोबी में 19 दिसम्बर 2015 को खत्म हुआ। इसे 18 को ही खत्म होना था, पर यह एक दिन देर तक चला। हममें⁶² से कई जो इस बैठक में शामिल थे यह समझ नहीं पाए कि इस बैठक को किस आधार पर सफल बताया जा रहा था। बावजूद इसके कि कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर बुनियादी मतभेद था। इस बैठक के दौरान एक समय ऐसा भी आया, जब पूरी बहस ढहने और सम्मेलन विफल होने के कगार पर थी। पर फिर ऐसा क्या हुआ कि यह वार्ता अचानक से सफल हो गई? भारत जैसे देश को क्यों चुप करा दिया गया और उसे मजबूर कर दिया गया कि वह खाद्य सुरक्षा जैसे कूटनीतिक मुद्दे पर समझौता कर ले?

19 दिसम्बर 2016 को 24 घंटे से भी अधिक चली बैठक के नतीजे 'नैरोबी मंत्रिस्तरीय घोषणापत्र' (Nairobi Ministerial Declaration) या 'नैरोबी पैकेज' के रूप में सामने आए। नैरोबी मंत्रिस्तरीय बैठक का एक प्रमुख मुद्दा था – दोहा विकास दौर का अस्तित्व। अमेरिका और यूरोपीय संघ जैसे विकसित देश इस एजेंडा को हमेशा के लिए रद्द करना चाह रहे थे और विकासशील देश इसे आगे बढ़ाने की कोशिश में लगे हुए थे जिससे इनकी सभी प्रावधानों जो विकासशील देशों के समर्थन में हैं उसे पूरा किया जा सके।

दोहा विकास दौर के मुद्दे पर मत विभाजन इस घोषणापत्र में साफ झलकता है। इसका परिच्छेद 30 कहता है – “हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि कई सदस्य दोहा विकास एजेंडा में अपना पूरा समर्थन देते हैं और इसे पूरी तरह कार्यान्वित करने के लिए वचन बद्ध है और इसके प्रति अपनी पूरी प्रतिबद्धता जाहिर कर रहे हैं, पर दूसरे सदस्यों का मानना है कि बहुराष्ट्रीय समझौते के अर्थपूर्ण नतीजों के लिए नए दृष्टिकोण को अपनाना जरूरी है। समझौते को सम्बोधित करने को लेकर सदस्यों के अलग-अलग विचार हैं।”

नैरोबी घोषणापत्र में कृषि, कपास और कम विकसित देशों से सम्बन्धित 6 निर्णय शामिल हैं। कृषि निर्णय में निर्यात सब्सिडी को खत्म करने की प्रतिबद्धता, खाद्य सुरक्षा के लिए सार्वजनिक खाद्य भण्डारण, विकासशील देशों के लिए सुरक्षण उपाय, और कपास से सम्बन्धित उपाय शामिल है। कम विकसित देशों के लिए सेवा के क्षेत्र में विशेषाधिकार व्यवहार से सम्बन्धित निर्णय भी लिए गए हैं।

WTO सदस्यों के बीच कृषि से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर भारी मतभेद होने के कारण हममें से कुछ नागरिक समाज समुदाय और 'ला विया कम्पेसिना'⁶³ के प्रतिनिधि, यह अनुमान लगा रहे थे कि सिएटल और कैनकून की तरह ही नैरोबी में भी कोई नतीजा नहीं निकल पाएगा। WTO के 20 वर्षों के इतिहास को देखते हुए हमें

⁶² फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ से अफसर जाफरी ने भाग लिया था

⁶³ 'ला विया कम्पेसिना' एक अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन है जो पूरे विश्व के करोड़ों किसानों, छोटे और मध्यम किसानों, भूमिहीन लोगों, महिला किसानों, आदिवासी, कृषि मजदूरों को एक साथ जोड़ता है। विश्व के करीब 73 देशों में इसके करीब 164 स्थानीय और राष्ट्रीय संगठन हैं।

इस बात का भी डर था कि कहीं अंतिम फैसला तीसरी दुनिया के देशों के मुद्दों को ताक पर रखकर अमेरिका जैसे विकसित देशों के पक्ष में न चला जाए। जब नैरोबी घोषणापत्र सामने आया तो हमारा डर सच में बदल गया। अमेरिका को जो भी चाहिए था वह उसे मिला पर कम विकसित देश (LDC), अफ्रीका और अन्य विकासशील देशों के हाथ कुछ नहीं लगा। 5 दिनों तक लगातार जोरदार बहस करने के बाद भी दक्षिण के 150 से भी अधिक विकासशील देशों के हाथ कुछ नहीं लगा। उदाहरण के रूप में विकासशील देशों के लिए खाद्य भण्डारण का कोई स्थाई समाधान नहीं निकला, विशेष सुरक्षण उपाय पर कोई निर्णय नहीं लिया गया; निर्यात सब्सिडी को खत्म करने की अन्तिम तारीख बढ़ा दी गई; निर्यात आर्थिक समर्थन के लिए ज्यादा लम्बी भुगतान अवधि (निर्यात क्रेडिट); और दोहा विकास दौर को जारी रखने पर कोई सहमति नहीं बन पाई। पर नैरोबी में एक ऐसी भाषा सामने आई जिससे 21वीं शताब्दी के 'नये' मुद्दों⁶⁴ (सिंगापुर मुद्दों) की सम्भावनाएं खुल जाती हैं। इस तरह एक बार फिर से यह साबित हो गया कि WTO को गरीबों के हित की नहीं बल्कि अमीरों के मुनाफे की ज्यादा परवाह है।

जब 15 दिसम्बर को नैरोबी में बैठक शुरू हुई तो कृषि के अलावा कोई भी मुद्दा एजेंडा में नहीं था। GATS (सेवाओं से सम्बन्धित), NAMA (उद्योगों से सम्बन्धित), TRIPS (बौद्धिक एकाधिकार का मुद्दा) को अलग रखा गया था ताकि कृषि में विकासशील देशों के पक्ष में सकारात्मक फैसला हो सके। पर अफ्रीका और दक्षिण की देशों के लिए कोई भी सकारात्मक परिणाम नहीं आया। कुछ विकासशील देश इस बात से प्रसन्न हैं कि नैरोबी घोषणापत्र में कृषि आयात सब्सिडी को खत्म करने का समझौता हुआ है। परन्तु यह जीत नहीं है। सच्चाई तो यह है कि 2005 में ही हांगकांग वार्ता के दौरान तय हो गया था कि विकसित देश 2013 तक अपनी सारी निर्यात सब्सिडी खत्म कर देंगे। नैरोबी वार्ता में तो इसे और आगे 2020 तक बढ़ा दिया गया है। और तो और यह छूट भी सभी के लिए नहीं है। विशेष रूप से अमेरिका और यूरोपीय संघ के प्रसंस्कृत और डेरी उत्पादों को ही इसका फायदा पहुंचेगा क्योंकि यह उन देशों के ऊपर लागू नहीं होगा जिन्होंने अभी-अभी निर्यात सब्सिडी की अधिसूचना जमा की है।

नैरोबी में आए 'कोरियन पेजेंट लीग' (कोरिया के किसान संगठन) के हॉय-योन चुन कहते हैं – "गरीब किसान के पास अपने उत्पादों को बेचने के लिए कोई जगह नहीं है; स्थानीय उद्योगों ने द्वार बन्द कर लिए हैं और वे मजदूरों को भी वापस भेज रहे हैं क्योंकि पुरे विश्व भर में प्रसंस्कृत खाद्य सामग्रियों की सुपर मार्केट में बाढ़ आ गई है। हमारे उत्पाद अमेरिका और यूरोप के प्रसंस्कृत खाद्य सामग्रियों की बराबरी नहीं कर सकते। उनकी कीमत बहुत कम है"। 'कोरियन पेजेंट लीग' और 'ला विया कम्पेसिना' के किसान जो विश्व भर के अलग-अलग हिस्सों से आए थे, रोजाना नैरोबी की सड़कों पर उतर कर WTO के खिलाफ विरोध प्रदर्शन कर रहे थे। उनके मुख्य नारे थे – "कृषि तुम्हारा व्यापार नहीं, वह हमारी जिंदगी है" व "हमारी जिंदगी व्यापार के लिए नहीं है। "कृषि को WTO से बाहर करो"

⁶⁴ 'नये' मुद्दों को 'सिंगापुर मुद्दे' भी कहा जाता है। इन्हें विकसित देशों द्वारा प्रोत्साहित किया जा रहा है जिसमें मुख्य रूप से निवेश, सरकारी खरीद में पारदर्शिता, प्रतिस्पर्धा, वैश्विक वेल्यू चेन, ई-कामर्स, इत्यादि मुद्दे शामिल हैं।

नैरोबी में कृषि और विकासशील देशों का नुकसान

खाद्य भण्डारण कार्यक्रम के स्थाई समाधान पर कोई निर्णय नहीं : नैरोबी घोषणापत्र सार्वजनिक खाद्य भण्डारण जैसे कार्यक्रमों के स्थाई समाधान को लेकर सिर्फ नेक मंशा ही जाहिर करता है। नैरोबी में स्थाई समाधान का मुद्दा सबसे ज्यादा उपेक्षित मुद्दा रहा, बावजूद इसके भारत ही नहीं बल्कि कई अफ्रीकी देश जैसे तुनिसिया, जाम्बिया, जिम्बाबवे, मोरोक्को, मिश्र, और कीनिया में सार्वजनिक खाद्य भण्डारण के कार्यक्रम चल रहे हैं।

विशेष सुरक्षण उपाय पर कोई अन्तिम निर्णय नहीं : जी-33 देशों ने अपने खाद्य उत्पादकों को आयात लहर से बचाने के लिए प्रशुल्क बढ़ाने को लेकर यह मांग की थी। नैरोबी में इसे अनदेखा कर दिया। नैरोबी घोषणापत्र में 'विशेष सुरक्षण उपाय' के ऊपर यह कहा गया है कि हांगकांग मंत्रिस्तरीय घोषणापत्र (परिच्छेद 7) के अनुसार ही आगे भी विकासशील देशों को 'विशेष सुरक्षण उपाय' के अधिकार प्राप्त होंगे। अर्थात् ये पहले की तरह ही आयात मात्रा और कीमत 'ट्रिगर' पर आधारित होंगे।

परन्तु इस निर्णय के परिच्छेद 2 से यह पता चलता है कि 'विशेष सुरक्षण उपाय' का फैसला निर्णायक या अंतिम नहीं है। घोषणापत्र में यह भी कहा गया है कि 'विशेष सुरक्षण उपाय' के ऊपर आगे की वार्ता को



नैरोबी में डब्ल्यू.टी.ओ. के खिलाफ किसानों का प्रदर्शन

Photo Courtesy : Junya Yimprasert (La Via Campesina)



नैरोबी में डब्ल्यू.टी.ओ. के खिलाफ किसानों का प्रदर्शन

Photo Courtesy : Junya Yimprasert (La Via Campesina)

समर्पित रूप से 'कमेटी ऑन एग्रीकल्चर इन स्पेशल सेशन' (डब्ल्यू.टी.ओ. में कृषि समिति के खास स्तर) में किया जाए।

विकासशील देशों के इन मूलभूत सुरक्षण उपायों का विकसित देश विरोध कर रहे हैं जबकि उनके खुद के पास 'विशेष कृषि सुरक्षण उपाय' (SSG) जैसे उपाय मौजूद हैं। इन उपायों की मदद से विकसित देश अपने घरेलू खाद्य उत्पादकों की सुरक्षा के लिए आयातित उत्पादों के ऊपर प्रशुल्क बढ़ा देते हैं ताकि उनके देश में कीमतें स्थिर रहें। इसके अलावा विकसित देशों के पास अन्य उपाय भी हैं जो इन्हें आयात से बचाते हैं, जैसे – प्रशुल्क सीमा, प्रशुल्क दर कोटा और गैर-प्रशुल्क अवरोध। परन्तु अमेरिका, यूरोपीय संघ, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया जैसे विकसित देश विकासशील देशों के लिए 'विशेष सुरक्षण उपाय' देने को तैयार नहीं हैं, जो कई बार आयात लहर से प्रभावित हुए हैं।

'कपास-4' (C-4) देशों को कपास पर कोई राहत नहीं : नैरोबी घोषणपत्र में 'कपास-4' देशों को थोड़ी राहत तो मिली परन्तु वह 12 अक्टूबर 2015 के इनके प्रस्ताव की तुलना में काफी कम था। बेनिन, बुर्किना फासो, चाड, माली इत्यादि देशों में कपास का क्षेत्र दूसरा सबसे बड़ा रोजगार देने वाला क्षेत्र है। इसमें करीब 10 लाख यूनिजन के जरिए करीब 70-80 लाख वयस्कों को रोजगार मिलता है और करीब 1 से 1.3 करोड़

लोगों की आजीविका इससे जुड़ी हुई है। परन्तु बाजार तक सीमित पहुंच और अमेरिका की भारी सब्सिडी की वजह से इन देशों में कपास उत्पादकों को कड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

अफ्रीका में डब्ल्यू.टी.ओ. का सम्मेलन होने के बावजूद नैरोबी घोषणापत्र में कपास को लेकर कोई भी प्रावधान बाध्यकारी नहीं है, बल्कि केवल 'उत्तम प्रयास के परिणामों' पर भरोसा जताया गया है। उदाहरण के लिए इस घोषणापत्र में कहा गया है कि, कम विकसित देशों के कपास को (शुल्क-मुक्त और कोटा-मुक्त रूप से) विकसित देशों के बाजार में प्रवेश दिया जाएगा; और विकासशील देश 1 जनवरी 2016 के बाद से ऐसा कर सकेंगे। इसके साथ-साथ यह भी निर्णय लिया गया कि विकसित देश तुरन्त निर्यात सब्सिडी पर रोक लगाएंगे; और विकासशील देश को कुछ समय बाद से ऐसा करने के लिए कहा गया।

घरेलू समर्थन का मुद्दा (सब्सिडी) : यह आश्चर्यजनक बात है कि दोहा वार्ता के बाद यह पहली मंत्रिस्तरीय बैठक है जहां विकसित देशों के व्यापार विकृत करने वाली कृषि सब्सिडी की कटौती के बारे में कोई बहस नहीं हुई।

अफ्रीकी देश, कम विकसित देश और अन्य विकासशील देशों में से किसी ने भी खुलकर अमेरिका की मनमानी का विरोध नहीं किया। कुछ विकासशील देशों में थोड़ी बेचैनी जरूर दिखी क्योंकि नैरोबी में 'दोहा विकास एजेंडे' को बरकारार रखने पर कोई पुष्टि नहीं हुई। वे इस बात से भी परेशान थे कि नैरोबी घोषणापत्र में 'नये' मुद्दों के शामिल होने की सम्भावनाओं का जिक्र था।

हम सब का मानना है कि नैरोबी वार्ता में दोहा दौर विकास एजेंडा को लगभग दफन कर दिया गया। इस वार्ता को इस बात से भी याद रखा जाएगा कि जिन 'नये' मुद्दों को 13 साल पहले कैनकून में रद्द कर दिया गया था उन्हें फिर से एजेंडा में शामिल कर लेने की पूरी तैयारी हो गई है। नैरोबी मंत्रिस्तरीय सम्मेलन के परिणाम हमें इस बात से आगाह करते हैं कि, विकासशील देशों को एकजुट होकर WTO से हमेशा-हमेशा के लिए बाहर निकल जाना चाहिए।

1 मिलियन	=	10 लाख
10 मिलियन	=	1 करोड़
100 मिलियन	=	10 करोड़
1 बिलियन	=	100 करोड़

औसत वार्षिक विनिमय दर

वर्ष	1 डॉलर = भारतीय रुपये	1 यूरो = भारतीय रुपये
1990	17.49	00
1991	22.71	00
1992	28.15	00
1993	31.29	00
1994	31.39	00
1995	32.41	00
1996	35.50	00
1997	36.36	00
1998	41.35	00
1999	43.05	45.88
2000	44.93	41.44
2001	47.15	42.25
2002	48.60	45.80
2003	46.57	52.75
2004	45.12	56.19
2005	43.92	54.69
2006	45.24	56.85
2007	41.48	56.68
2008	43.78	64.14
2009	48.36	67.36
2010	45.65	60.57
2011	46.45	64.65
2012	53.42	68.59
2013	58.51	77.82
2014	61.00	81.05
2015	64.12	71.14

Source : <http://www.usforex.com/forex-tools/historical-rate-tools/yearly-average-rates>

FOCUS ON THE GLOBAL SOUTH

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ, एशिया (थाईलैंड, फिलीपीन्स एवं भारत) में स्थित एक नीति शोध संगठन है। फोकस भारत एवं विश्व के दक्षिण भाग (यानी विकासशील देशों) में वैश्वीकरण की राजनीतिक अर्थव्यवस्था और इस प्रक्रिया में अंतर्निहित प्रमुख संस्थाओं के बारे में शोध तथा विश्लेषण प्रदान कर सामाजिक आंदोलनों एवं समुदायों की सहायता करता है। फोकस के लक्ष्य दमनकारी आर्थिक एवं राजनीतिक संरचनाओं की समाप्ति, स्वतंत्र संरचनाओं तथा संस्थाओं का निर्माण, विसैन्यीकरण और शांति को बढ़ावा देना है।



रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफ़्टुंग (आर.एल.एस.)

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफ़्टुंग (आर.एल.एस.) जर्मनी में स्थित एक फाउंडेशन है, जो दक्षिण एशिया की तरह ही विश्व के अन्य भागों में महत्वपूर्ण सामाजिक विश्लेषण और नागरिक शिक्षा के विषयों पर कार्य कर रहा है। यह एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था को बढ़ावा देता है। इसका उद्देश्य समाज एवं नीति निर्धारकों के सामने वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना है। यह शोध संगठनों, स्व-मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले समूहों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को उन मॉडल्स के विकास में उनकी पहलों में मदद देता है, जिनमें अत्यधिक सामाजिक एवं आर्थिक न्याय देने की क्षमता है।

